नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-७ * अंक-१२ * मुम्बई * दिसम्बर-२०१६ * मूल्य-रु.९/-

स्थापना वर्ष:१९४२

संन्यासाश्रम-प्रवेश से एक दिन पूर्व (११ अप्रैल, १९११ को) (१८५६-१९२६)

स्वामी श्रद्धानन्द जी

नारी सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त कर समाज का कल्याण करे

डा. अशोक आर्य

पुरन्धि शब्द का प्रयोग वेद में स्त्री के लिए हुआ है और यह शब्द एक बार नहीं वेद में अनेक बार किया है। हम देश व राष्ट्र के लिए भी पुरन्धि के अनुरूप ही अत्यंत बुद्धिमती तथा कर्मशील देवियों की आवश्यकता अनुभव करते हुए वेद के ही आधार पर इस प्रकार की देवियों की चर्चा करते हैं। तथा:-

आ ब्राह्मन ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्य:
शूरऽइषवयोऽतिव्याधी महारथो
जयतां द्रोग्धी धेनुर्वोढानड्वानाशु: सप्ति:पुरान्धिर्योषा
॥ यजुर्वेद २२.२२)

इस मन्त्र में योषा शब्द स्त्री वाचक रूप में आया है। इस शब्द का प्रयोग करते हुए योषा अर्थात् पुरन्धि शब्द के माध्यम से कहा गया है कि हमारी स्त्रियाँ अत्यंत कर्मशील हों तथा अत्यंत बुद्धिमती हों, यह प्रार्थना इस मन्त्र के माध्यम से इसलिए की गयी है क्योंकि किसी भी राष्ट्र के उत्थान के लिए उस राष्ट्र के पास अत्यंत कर्मशिला तथा बुद्धिमती स्त्रियों का होना आवश्यक होता हैं। इस के बिना कोई भी राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता।

इस प्रकार मन्त्र आदेश देता है कि हम नारियों का बद्धिमती व कर्मशिला होने जैसे उत्तम गुणों को संजोते हुए हमारी देवियों की और सब प्रकार से सुखों को प्राप्त कराते हुए, उन्हें सब प्रकार के सुखों में निवास करावें, निवास कराना चाहिए। वेद कहता है कि सौभाग्य की वास्तविक प्राप्ति उत्तम ज्ञान के बिना संभव नहीं है। इसलिए सौभाग्य की प्राप्ति के लिए नारी को उत्तम गुणों को प्राप्त करना आवश्यक होता है। इस कारण ही यह मन्त्र उपदेश कर रहा है कि नारियां धर्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सब प्रकार के संभव प्रयास करें। इन प्रयासों में वेद अमृत का पान करना सब से प्रमुख है। हम जानते हैं कि वेद का ज्ञान सब ज्ञानों का मूल है। जब हम मूल ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं तो फिर उस ज्ञान की शाखाओं का हमारे लिए कुछ भी महत्व नही रह जाता । इसलिए मन्त्र कहता है कि हम मूल को पकड़ें। मूल को पकडने में कुछ भी भूल न करें। हमारी नारियां वेद रूपी अमृत का इतना पान करें, इतना पान करें कि वेद न केवल छोटे विद्वान् ही अपितु वेद के बड़े बड़े विद्वान् भी इन नारियों की विद्वत्ता की सब दिशाओं में सदा चर्चा करते रहें।

मन्त्र आगे कहता है कि इस प्रकार का ज्ञान उत्तम ज्ञान होता है, इस प्रकार का ज्ञान पवित्र ज्ञान होता है, यह ईश्वरीय ज्ञान है। जो ज्ञान स्वयं ईश्वर ने हमारे कल्याण के लिए, हमारे उत्थान के लिए, हमारी उन्नति के लिए किया है, उस से उत्तम और कौन सा ज्ञान हो सकता है? किन्तु इस प्रकार के ज्ञान रूपी यज्ञ बिना किस मार्ग दर्शन के संपन्न नहीं हो सकते। इस से स्पष्ट होता है कि उत्तम ज्ञान की, पवित्र ज्ञान की प्राप्ति के लिए किसी उत्तम मार्ग दर्शक की आवश्यकता होती है। इस मार्गदर्शक को हम अध्यापक अध्यापिका अथवा उपदेश - उपदेशिका भी कह सकते हैं। इस से स्पष्ट होता है कि इस उत्तम ईश्वरीय ज्ञान को पाने के लिए हमें किसी महा अर्थात् अत्याधिक विद्वान् अध्यापकों व अध्यापिकाओं की शरण में जाना होगा, किन्हीं उत्तम उपदेशिका के पास जाना होगा, जो संयमी तथा विद्वान् हो। इस प्रकार वेद का यह मन्त्र नारी शिक्षा पर अत्यधिक बल देते हुए आदेश देता है कि नारियां भी उत्तम विद्वान् हों और इस प्रकार के उच्च ज्ञान को पाने के लिए वह किन्हीं उत्तम विद्वान् अध्यापक-अध्यापिका, उपदेशक उपदेशिका से उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

मन्त्र कहता है कि स्त्रियों के लिए उत्तम गृहिणी बनना होगा, उन्हें उत्तम गुणों को ग्रहण करना होगा, उन्हें कर्तव्य परायण माता बनना होगा। यह सब कैसे हो सकता है? इस का समाधान भी यह मन्त्र देता है। मन्त्र कहता है कि गृहिणी को यह सब गुण अपने में पैदा करने के लिए, यह सब गुण अपने में विकसित करने के लिए, यह आवश्यक है कि वह वेद शास्त्र की उत्तम शिक्षा को प्राप्त करे क्योंकि सब प्रकार की उत्तम तथा कल्याणकारी शिक्षाओं का आधार, मूल वेद ही है।

मन्त्र यह भी उपदेश करता है कि केवल पुस्तकीय ज्ञान स्त्रियों को गृह कार्यों से विमुख कर देता है। हम आज देख भी रहें कि आज स्कूलों में केवल पुस्तकीय ज्ञान दिया जाता है, इस कारण आज की महिला अपने कर्तव्यों से विमुख हो रही है तथा गौदू संस्कृति का विकास हो रहा है। आज की नारी न तो अपने बच्चों को संभालने की इच्छा रखती है और न ही गृह कार्य में उसे कुछ भी रुचि है, वह तो सब कुछ मुंडू पर अर्थात् नौकर के हाथों में डकार स्वयं अय्याशी होती जा रही है, किट्टी पार्टी अर्थात् जुए के अड्डे उसके जीवन का आवश्यक अंग बन गया है। इसलिए हमें देश की भावी पीढ़ी के लिए बहुत चिंता हो रही है। हम मन्त्र के उपदेश को समझें और इस के अनुरूप अपने जीवन को चलाने के लिए नारी को बुद्धि मति, सुशील करावी परायण बनाने के लिए उसमें स्वाध्याय के प्रति अनुराग पैदा करना होगा तथा उसे वेद के अन्यतम विद्वानों के चरणों में बैठ कर उत्तम ज्ञान को पाने का प्रयास करना होगा। इस ज्ञान को पाकर वह स्वयं को अत्यंत बुद्धिमती बनावें, अपने आप को अत्यंत पुरुषार्थी बनावें, पुस्तकीय ज्ञान से ऊपर उठ कर वेद के ज्ञान को प्राप्त करें तो वह उचित शिक्षा की अधिकारी बनाकर देश, जाति , धर्म व विश्व की प्रगति का काम करेंगी। अत: नारी को जन कल्याण के लिए वेद के इस आदेश का पालन करना होगा।

104, शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी 201010
गाजियाबाद चलाभाष 09718528068

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ७ अंक १२ (दिसम्बर-२०१६)

- दयानंदाब्द : १९३, विक्रम सम्वत् : २०७३
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११७

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/-
- एक प्रति : रु. ९/-
- वार्षिक : रु. १००/-
- आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
नारी सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त कर समाज का कल्याण करे	२
सम्पादकीय	३
श्रेय को चुनो, प्रेय को नहीं	४-५
ईश्वर की रचना और उसकी उपासना	६
एक राजा और सन्त	७
ईश्वर जीव तथा प्रकृति का सम्बन्ध	८
हे जीव। तूं सूर्य और चन्द्र के समान निर्भय बन	९
अशान्ति में शान्ति	१०
पर्यावरण और संगीत	११-१२
समान नागरिक कानून	१३
सूर्य चिकित्सा	१३
पूर्णता की ओर अग्रसर हम सब	१४-१५
विचार शक्ति का चमत्कार	१६

सम्पादकीय

ईश्वरीय ज्ञान

महर्षि दयानन्द सरस्वती की महति कृपा से लुप्तप्राय होती जा रही वैदिक संस्कृति को सही परिपेक्ष्य में पुनः आर्यों के सामने रखकर उन्होंने हम पर अनन्य उपकार किये हैं। वस्तुतः वैदिक जीवन पद्धति ईश्वरी यव्यवस्था के अनुकुल एक वैज्ञानिक जीवन पद्धति है। बुद्धिजीवी वैज्ञानिक चाहे जितनी खोज करते रहें अन्ततः उनकी खोज का निचोड़ वैदिक जीवन पद्धति ही है। वैदिक जीवन पद्धति एवं याज्ञिक जीवन वर्तमान में हम जिस संदर्भ में देखते - समझते हैं वैसा न होकर विकासोन्मुख एवं समग्र जीवन ही यज्ञमय, विज्ञानमय की अवधारणा से आच्छादितहै। किन्तु वर्तमान में हम उस वैदिक जीवन को व्यवहार में अपनाने का प्रयास न करके सिर्फ कर्मकाण्ड तक ही सीमित होते जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप हमारा स्वरूप भी सिमटता जा रहा है। स्वतन्त्रता आन्दोलन में सत्यार्थ प्रकाश की महति भूमिका रही हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम समुल्लास एक आन्दोलन है। वर्तमान में भटकती पीढ़ि ईश्वर के स्वरूप से बिलकुल अनभिज्ञ है। परिणाम स्वरूप प्रतिदिन नये भगवान / अवतार जन्म ले रहे हैं। भटकते आर्य जनों को सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास के ज्ञान से परिचित क़राके हम उन्हें सही ज्ञान दे सकते हैं। इसे एक आन्दोलन का रूप भी दिया जा सकता है। सिर्फ उनके मार्ग को गलत कहने के बजाय यदि हम सही ज्ञान और मार्ग उनके सामने रख देंगे तो उनका ज्ञान बढ़ेगा। सिर्फ ईश्वरीय, सही वैज्ञानिक ज्ञान ही मनुष्य का कल्याण कर सकता है। तो आइये! सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास को जन-जन तक पहुँचाने का संकल्प लें और ब्रह्मा-विष्णु-महेश, सचिदाननन्द, सगुण-निर्गुण, गणेश-गणपति, राहु-केतु, माता-पिता इत्यादि अनेक ईश्वर के गुण कर्म स्वभावानुसार नामों की सही व्याख्या सामने रखकर ज्ञान का प्रसार करें।

- संगीत आर्य- 9323 573 892

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-७ अंक-१२ मुम्बई दिसम्बर - २०१६ पृष्ठ-०४ मूल्य- रु. ९/-

श्रेय को चुनो, प्रेय को नहीं

ओमप्रकाश सामवेदी

वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने विश्वजित् यज्ञ किया। उसमें उन्होंने अपना सारा धन दे डाला। उनका छोटा-सा बेटा था- नचिकेता। नचिकेता ने सोचा कि पिता ने बूढ़ी और दूध न देनेवाली ठूँठ गायें भी दान में दी हैं तो उन्हें यज्ञ का फल कैसे मिलेगा? वह पूछ बैठा- 'मुझे किसे देते हैं आप?'

पिता कुछ न बोले।

नचिकेता ने तीन बार अपना सवाल दोहराया। पिता नाराज होकर बोले- 'तुझे देता हूँ यमराज को।'

पिता की बात झूठी न जाय, यह सोच नचिकेता चल दिया यमराज के पास।

यमराज घर पर नहीं थे। तीन दिन बाद वे घर लौटे। तब तक नचिकेता उन्हीं के द्वार पर बिना खाये-पिये उनकी राह देखता रहा। यमराज ने नचिकेता से कहा- 'हे अतिथिदेव, मुझे क्षमा करो। तुम तीन दिनों से मेरे दरवाजे पर भूखे हो, मैं तुम्हें तीन वरदान देता हूँ।'

नचिकेता ने पहला वरदान माँगा- 'मेरे पिता का क्रोध शान्त हो। मैं लोटकर घर जाऊँ तो वे प्रसन्नता से मेरा स्वागत करें।

यमराज- 'ऐसा ही हो, तथास्तु।'

नचिकेता- 'अग्निविद्या क्या है, सो मुझे दीजिए।'

यमराज ने नचिकेता को अग्निविद्या समझायी। वह समझ गया। तब यमराज ने प्रसन्न होकर उससे कहा- 'अब यह अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। अब से इसका नाम होगा- नचिकेताग्नि।'

नचिकेता ने तीसरा वरदान माँगा- मरे हुए मनुष्य के बारे में कोई कहता है कि वह 'रहता है,' कोई कहता है 'नहीं रहता' - इसका रहस्य आप मुझे बताइये।'

यमराज ने कहा- 'नचिकेता, यह सूक्ष्म धर्म आसानी से समझ में नहीं आता। इसका हठ छोड़ दूसरा कोई वरदान माँग ले।'

पर नचिकेता तो इसी वरदान के लिए अड़ गया।

यमराज ने उसे तरह-तरह के प्रलोभन दिये। कहा- 'तू सौ वर्ष की उम्रवाले बेटे, पोते, पशु, हाथी, घोडे, सोना, चाँदी, जमीन आदि चाहे जो माँग ले, पर इस वर को छोड़ दे।'

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा रामाः सरथाः समथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।।

-कठ. १।१।१५

'मनुष्य लोक में जो-जो दुर्लभ भोग हैं, वे सब तू माँग ले। रथ और घोड़ों के सहित स्वर्ग की सुन्दरियों से भी तू अपनी सेवा करा ले, पर इस वरदान पर जोर मत दे।'

पर नचिकेता अपनी बात पर अड़ा रहा। यमराज के नाना प्रलोभन उसे लुभा नहीं सके। तब यमराज समझ गये कि बालक को आत्मज्ञान दिया जा सकता है। यह उसका अधिकारी है। योग्य व्यक्ति को ही आत्मज्ञान दिया जाता है। यमराज ने कहा-

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुत्तैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरूषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।।

- कठ. १।२।१

'सुख दो तरह के होते हैं। एक हैं प्रेय, दूसरा है श्रेय। जो आरम्भ में सुख देता है और अन्त में दुःख, उसका नाम है प्रेय। जो आरम्भ में दुःख देता है और अन्त में सुख, उसका नाम है श्रेय। जो आदमी श्रेय का ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है। जो आदमी प्रेय की तरफ झुक जाता है, वह पुरुषार्थ से गिर जाता है।'

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

- कठ. १।२।२

'श्रेय और प्रेय एक-दूसरे में मिले हुए-से आदमी के पास आते हैं। बुद्धिमान् आदमी भली-भाँति सोच-समझकर उन्हें अलग-अलग करता है। विवेकी मनुष्य श्रेय को ही चुनता है, प्रेय को नहीं। जो मूर्ख है, वह योगक्षेम के बहाने प्रेय को चुनता है।'

यमराज ने कहा- 'हे नचिकेता ! तूने श्रेय को चुना, प्रेय को नहीं। इसलिए तू आत्मज्ञान का अधिकारी है।'

फिर उन्होंने नचिकेता को आत्मज्ञान सिखाया।

आत्मा को जानो

न जायते म्रयते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव काश्चित्।
आजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

- कठ. १।२।१८

आत्मा न तो कभी पैदा होती है, न कभी मरता है। न तो यह किसी में से उत्पन्न हुई और न इसमें से कुछ उत्पन्न हुआ। इसका जन्म नहीं होता। यह सदा बनी रहती है। नित्य है, शाश्वत है। शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मरती।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

-कठ. १।२।२०

यह आत्मा अणु से भी छोटी है और महान् से भी महान्। यह प्रत्येक प्राणी के भीतर छिपी है। जिस आदमी में किसी तरह की इच्छा बाकी नहीं है, उसे अपने मन और इन्द्रियों की शान्ति से इसके दर्शन होते हैं। उसके सभी तरह के दुःख मिट जाते हैं।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेने लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।।

- कठ. १।२।२३

यह आत्मा न तो वेदाध्ययन से मिलती है, न बुद्धि से और न बहुत शास्त्र सुन लेने से। आत्मा केवल उसीको मिलती है, जिसे वह स्वयं चुनती हैं। ऐसे ही आदमी को आत्मा अपना दर्शन कराती है।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित:।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

- कठ. १।२।२४

जिस आदमी ने अपनी बुरी आदतें नहीं छोड़ीं, जो शान्त नहीं है, जिसका चित्त एकाग्र नहीं है, जिसका मन चारों ओर भटकता रहता है, वह केवल ज्ञान से इस आत्मा को कभी नहीं पा सकता।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च।।

- कठ. १।३।३

आत्मा को रथ में बैठा हुआ रथी मानो, शरीर को उसका रथ मानो, बुद्धि को सारथी मानो और मन को लगाम।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण:।।

- कठ. १।३।४

इन्द्रियों को घोड़े कहा गया है, इन्द्रियों के विषयों को सड़कें। शरीर, इन्द्रियों और मन के साथ जब आत्मा की पटरी बैठती है, तब सच्चा सुख मिलता है।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मन: प्रग्रहवान्नर:।
सोऽध्वन: पारमाप्रोति तद्विष्णो: परमं पदम् ।।

- कठ. १।३।९

जो आदमी विवेकयुक्त बुद्धि-सारथीवाला हो, मनरूपी लगाम जिसके हाथ में हो, उसी की संसार-यात्रा सफल होती है। वह विष्णु के परम पद को पाता है।

नान्त:प्रज्ञं बहिष्प्रज्ञं नोभयत: प्रज्ञं न प्रज्ञानधनं प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृश्यमव्यवहार्य मग्राह्यमल क्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवेमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय:।।

-माण्डूक्य. ७

आत्मा की चौथी अवस्था है, तुरीया। वह न अन्त: प्रज्ञ है, न बहिष्प्रज्ञ है और न यह दोनों। वह न प्रज्ञानधन है, न प्रज्ञ है और न अप्रज्ञ। वह देखी नहीं जा सकती। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता। उसके कोई लक्षण नहीं। उसका चिन्तन नहीं किया जा सकता। उसका कोई पद नहीं बताया जा सकता। जाग्रत अवस्था में, स्वप्न में, सुषुप्ति में एक ही आत्मा है- यह आत्मप्रत्यय ही उसका सार है। उसमें सारा प्रपंच ठंडा हो जाता है। वह शान्त है, कल्याण करनेवाली है, अद्वैत है। उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है। वही आत्मा है। उस आत्मा को जानो।

तत्त्वमसि-वही तू है

आरूणि ऋषि का बेटा श्वेतकेतु गुरुकुल से पढ़कर लौटा तो पिता को लगा कि बेटे में कुछ घमण्ड आ गया है। उन्होंने कहा- 'बेटा, तू समझता है कि सब जान गया, पर यह तो बता कि तूने वह विद्या पढ़ी है, जिसे पढ़कर सब-कुछ पढ़ लिया जाता है?'

'सो तो मैं नहीं जानता पिताजी ! आप मुझे बताइये न।'

आरुणि बोले- 'बेटा, तूने मिट्टी देखी है न? मिट्टी के लोंदे से तरह-तरह के बर्तन बनते हैं- घडा, मटका, सुराही आदि। मिट्टी के खिलौने भी बनते है। किसी खिलौने को हम हाथी कहते हैं, किसी को घोड़ा। किसी को तोता, किसी को कबूतर। किसी को राजा, किसी को रानी। किसी को कुत्ता, किसी को बिल्ली। सबके नाम अलग, सबके चेहरे अलग। पर रहते हैं सबके सब मिट्टी ही। पानी डालते ही सब गलकर मिट्टी हो जायेंगे।'

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं।
स्यद्वाचारम्भर्ण विकारो नामधेय मृत्तिकेत्येव सत्यम्।।

-छान्दोग्य. ६।१।८

इन बर्तनों का, इन खिलौनों का नाम चाहे जो रहे, रूप चाहे जो रहे, पर इनके भीतर सत्य एक ही है- वह है, मिट्टी।

यही हाल सोना, चाँदी, लोहा, पीतल आदि धातुओं की बनी चीजों का है। लोटा हो या गिलास, कलसा हो या थाली, बाजूबन्द हो या नेकलेस-सबके भीतर तत्त्व तो एक ही है। जिस धातु की जो चीज बनी है, वही धातु उसमें सत्य है।

बेटा, यह सारा संसार एक ही तत्त्व से, एक ही सत् से बना है। उसे तू समझ ले।

सोम्येमा: सर्वा: प्रजा: सदायतना: सत्प्रतिष्ठा:।

-छान्दोग्य. ६।८।४

यह सारी प्रजा सत् पर ही ठहरी हुई है, सत् ही इसका सहारा है और सत् ही इसकी प्रतिष्ठा है। सत् के कारण ही इसकी सत्ता है।

स च एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।

- छान्दोग्य. ६।८।७

यह सारी जो अणिमा है, वही इस सारे जगत् की आत्मा है, वही सत्य है। वही आत्मा है और वही तू है- **'तत्त्वमसि'।**

सारे खनिज पदार्थ, सारी वनस्पति, सारे पशु-पक्षी, सारे मनुष्य, सारे जीव उसी एक तत्त्व से बने हैं। वह सत् तत्व आत्मा है और वही तू हैं- 'तत्त्वमसि'- 'तत् त्वम् असि'।

बात गहरी थी। समझ में नहीं आ रही थी। श्वेतकेतु ने प्रार्थना की- पिताजी मुझे ठीक से समझाइये।

तब आरूणि ने तरह-तरह से श्वेतकेतु को समझाया। कहा- 'बेटा! इस पेड़ पर तू कहीं से भी चोट कर, चाहे ऊपर, चाहे नीचे, चाहे बीच।

ईश्वर की रचना और उसकी उपासना

गंगाशरण आर्य

सृष्टि रचयिता परमपिता परमेश्वर की रचना एक अद्‌भुत कमाल है। संसार में हम सब एक नियम देखते है कि कोई वस्तु बिना बनाये नहीं बनती, यह सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, समुद्रों की गहराई और पर्वतों की ऊंचाई, यह सब देखकर यह मानना ही पड़ता है कि इन सबको कोई बनाने वाला है, जिसे ईश्वर कहते हैं क्योंकि वह ऐश्वर्यों का दाता व निर्माता है, उसी गुण के आधार पर उसका 'ईश्वर' नाम हुआ। अन्यथा उसका मुख्य नाम ''ओ३म्'' है।

''कुछ लोग ईश्वर को नहीं मानते''- सृष्टि में जो वस्तु बनती है, वह अवश्य बिगड़ती है। जो जन्मता है वह अवश्य मरता है। जमीन घूमती है जिससे दिन रात्रि बनते हैं। वृक्षों पर फल, फूल मेवे लगते हैं परन्तु जो फल जहां लगना चाहिए वहीं लगा है। बेर, लीची, अंगूर, अमरूद आदि ऊपर लगे हैं, और बड़े बड़े पेठे तरबूज आदि नीचे लगे हैं, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता, तो थोड़ी सी तेज वायु चलने पर कोई तरबूज, पेठा टूट कर नीचे गिर जाता तो मनुष्य का सिर फट जाता। इन नियमों को जो नियन्त्रण कर रहा है उसे ईश्वर कहते हैं।

ईश्वर कण-कण में व्यापक है- ईश्वर कोई ऐसा सेठ नहीं जो सृष्टि बनाकर कहीं चला गया हो। वह निराकार होने से कण-कण में व्यापक है। इसलिए सारी सृष्टि उसके नियम का पालन कर रही है। यदि वह सब वस्तुओं में व्यापक नहीं होता तो सारे नियम बिगड़ जाते। सृष्टि के आदि में बने मनुष्य, पशु, पक्षी जलचर और फूल-फल आदि आज भी वैसे ही हैं। जैसे सृष्टि के आदि में बने थे। उसमें कोई अन्तर नहीं आया, और न ही किसी व्यवस्था में खराबी आई। यही उसकी व्यापकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। परन्तु मनुष्य की बनाई सब चीजें इसलिए खराब होती हैं, क्योंकि वह वस्तुओं में व्यापक नहीं।

रचना में अन्तर- इस विशाल सृष्टि की रचना करके भगवान ने कमाल किया है। सृष्टि के सारे मनुष्य मिलकर भी एक चांद नहीं बना सकते। यद्यपि मानव ने भी अपनी रचना में कमाल किया है। जैसे वर्तमान में सुविधाएं टेलीफोन, टी.वी., वायुयान, राकेट आदि गर्मी में बर्फ, सर्दी में हीटर, बड़े-बड़े समुद्री जहाज और आज कल कम्प्युटर ने तो ऐसा कमाल किया कि लोगों को आश्चर्य में डाल दिया हैं जिसे मानव ने अपनी बुद्धि से कमाल किया है। परन्तु यह भी सोचना चाहिए कि उस मानव बुद्धि को बनाया तो ईश्वर ने ही है। अत: भगवान ने जिन वस्तुओं की मनुष्यों को आवश्यकता है, उन वस्तुओं में ही उन वस्तुओं को पैदा करने की शक्ति प्रदान कर दी, जैसे एक गेहूँ का दाना, सैंकड़ों गेहुँ के दाने पैदा कर सकता है, गाय-गाय पैदा कर सकती है आदि-आदि। परन्तु मनुष्य का बनाया रेल का इंजन अपने जैसा रेल का इंजन पैदा नहीं कर सकता, घड़ी-घड़ी पैदा नहीं कर सकती और सुई-सुई पैदा नहीं कर सकती है।

रचना में विशेषता - भगवान के नियमों को जानकर मनुष्य ने रचना तो की है, जैसे कुर्सी, मेज, कारें, रेल का इंजन, वायुयान आदि-आदि बनाए। परन्तु कुर्सी की लकड़ी को नहीं बनाया, रूई को नहीं बनाया, लोहे को नहीं बनाया, कोयले को नहीं बनाया, अग्नि को नहीं बनाया, जल को नहीं बनाया, पैट्रोल को नहीं बनाया, परन्तु रेल के इंजन को चलाया। इसलिए **महर्षि दयानन्द सरस्वती जी** महाराज आर्यसमाज के प्रथम नियम में कहते हैं कि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं- उनका सबका आदि मूल परमेश्वर है। फिर मनुष्य सब वस्तुएं दिन में या लाइट में ही बनाता है, फिर भी बहुत भूलें हो जाती हैं, परन्तु भगवान् सब काम अन्धेरे में ही करते है फिर भी कहीं भूल नहीं हो सकती यहीं रचना में विशेषता हैं।

क्या ईश्वर साकार है?- नहीं, क्योंकि जो वस्तु बनी या कभी जन्मी होती है, वह अवश्य बिगड़ेगी, साकार पदार्थ सीमित होता है, परन्तु भगवान तो सर्वव्यापक है, सर्वव्यापक, निराकार ही हो सकता है, भगवान विशाल है, अत: उसकी विशालता उसकी रचना में भी झलकती है जैसे उसकी धरती ने किसी को अन्न देने से इंकार नहीं किया। उसकी वायु ने किसी को प्राण देने से इंकार नहीं किया। उसके जल ने किसी को जीवन देने से इंकार नहीं किया। उसके सूर्य ने किसी को प्रकाश देने से इंकार नहीं किया। अत: उस व्यापक एवं विशाल को साकार कह कर हम उसे छोटा करने का अपराध करते हैं। वह महान है उसकी रचना में महानता झलकती है और छलकती है। उस महान का सब कुछ महान है। क्योंकि वह निराकार है।

ईश्वर, जीव, प्रकृति - ईश्वर की बनाई हुए सृष्टि होने से, कई सृष्टि को भी ईश्वर मान लेते हैं। लोहार, ट्रंक, पेटी को बनाता है, लोहे को नहीं। हलवाई मिठाई को बनाता है अन्न, घी, खाण्ड को नहीं। अत: समझ लेना चाहिए कि सृष्टि में तीन पदार्थ अनादि हैं, जिन्हें ईश्वर, प्रकृति और जीव कहते हैं। जिसने वस्तुओं को बनाया वह ईश्वर है, जिससे बनाया वह प्रकृति है जिसके लिए बनाया वह जीव है। जैसे- भगवान ने सूर्य को बनाया जिससे बनाया वह प्रकृति (परमाणु) है, जिसके लिए बनाया वह जीव है जिसने बनाया वह ईश्वर है। बनी वस्तु जहां बनाने वाले का पता देती है, वहाँ यह भी बताती है कि इसका कोई उपयोग करने वाला भी है, जिसे जीव कहते हैं। अत: तीनों पदार्थो को अनादि मानना, सार्वजनिक, सर्वकालिक सत्य है।

मनुष्य सृष्टि कर्ता नहीं हो सकता- आज के युग में ऐसे लोगों की कमी नहीं जो ईश्वर को सृष्टि कर्ता नहीं मानते। वे मनुष्यों को ही भगवान मान बैठे हैं। वे कहते हैं कि सृष्टि अपने आप बन गई परन्तु जो बनती है वह अवश्य ही बिगड़ती है। जड़ वस्तु एक ही काम कर सकती है, या तो बनती ही रहे या बिगड़ती ही रहे। विपरीत गुण होने का मतलब किसी का हस्तक्षेप है, उसे ही ईश्वर कहते हैं। जो निर्माण गति और संहार करता है। मेरे से एक युवक ने कहा कि जब भगवान निराकार है तो उसके हाथ-पांव हो ही नहीं सकते परन्तु संसार में सब कार्य हाथ-पांव आदि से ही होते हैं। अत: ईश्वर है ही नहीं। मैंने कहा बेटा! यदि हाथ और पांव के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता, तो तुम जब भोजन करते हो तो उसका रस इस शरीर में बनता है, खून बनता है, हड्डी आदि बनती है। बताओ किस हाथ-पांव से काम लिया? कौन-सा बिजली का बटन दबाया? दिन रात श्वास चलता है,

बताओ तुम इसमें क्या करते हो? हाथ-पांव से शरीर के बाहर के कार्य होते हैं जैसे बाल्टी को उठाना, कपड़े धोना, चलना, खाना आदि-आदि ! परन्तु शरीर के अन्दर के सब एनैच्छिक कार्य आत्मा सब बिन हाथ-पांव के अर्थात् बिना किसी सहायता के कर सकता है। वैसे ही ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण कोई भी पदार्थ उससे बाहर न होने के कारण सृष्टि का कार्य बिना हाथ-पांव के कर लेता है।

ध्यान कैसे करें- प्राय: लोग प्रश्न किया करते हैं कि जब कोई वस्तु सामने ही नहीं तो ध्यान कैसे होगा, अत: ध्यान करने के लिए मूर्तियां बनाई, परन्तु मूर्तियों में ध्यान हो ही नहीं सकता, क्योंकि जो पदार्थ, सामने होता है, उसका ध्यान नहीं, दर्शन होता है। ध्यान उसका ही होता है जो निराकार है। बच्चे जब पाठ भूल जाते हैं, तो अध्यापक कहा करते हैं बेटा, ध्यान करो, क्योंकि शब्द की शकल नहीं होती। मूर्तिपूजा करने वालों को भी जब अन्दर से आनन्द आने लगता है तो आंखें बन्द कर लेते हैं। क्योंकि ईश्वर का विषय आंखों का नहीं आत्मा का है। अत: ईश्वर का विषय भौतिक नही, आध्यात्मिक है, अत: ईश्वर की अनुभूति आत्मा से ही हो सकती है।

ध्यान कहां करें? कई लोग ध्यान के स्थान पर पूजा भी करते हैं, परन्तु ध्यान रखें पूजा माता-पिता, गुरू-अतिथि, गाय आदि की हुआ करती है क्योंकि पूजा का अर्थ है ''सेवा''। पूजा होती है हाथों से और उपासना होती है आत्मा से। पूजा होती है बाहर से और उपासना होती है अन्दर से। अत: प्रभु का मन्दिर (आत्मा का निवास स्थान) हृदय देश ही है। अत: भगवान कृष्ण गीता १८.६१ में कहते है, ''ईश्वर सर्वभूतानाम् हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।'' इसलिए ईश्वर का मिलन वहीं होगा जहां आत्मा भी हो। अत: ध्यान का स्थान हृद्देश अर्थात् हृदय से ब्रह्म रन्ध तक कहा गया है। अत: ध्यान भी यहीं करें।

ध्यान क्यों करें? उसके ध्यान से बैट्री चार्ज होती है- क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अच्छा बनना चाहता है ''यश'' चाहता है। जैसी संगत वैसी रंगत। यह एक मौलिक सच्चाई है कि हम यदि फल वाले की दुकान पर जायें तो सुगन्धि से भर जायेंगे। ठीक इसी प्रकार भक्ति से जीवन में सुगन्धि आती ही है। भगवान से प्यार करने वाले सबके प्यारे होते हैं। भगवान की संगति से उसकी प्रेरणा से उसकी कृपा से मनुष्य ''पवित्र'' होकर गुणों से भर जाता है। ''पवित्रता'' जीवन का मूल और भक्ति जीवन का ''फूल'' है। अत: ध्यान करें और फूल बनें।

भक्ति पवित्र होकर नित्य करनी चाहिये, क्योंकि भगवान नित्य और पवित्र है, अत: नित्य का नित्य से ही मिलन हो सकता है। समझने की बात यह है कि आत्मा और परमात्मा में अन्तर है, आत्मा अल्पज्ञ और परमात्मा सर्वज्ञ हैं, आत्मा पुरूष और परमात्मा परमपुरूष हैं, आत्मा-ससीम और परमात्मा असीम है। यह गणना नहीं हो सकती। अत: अन्त में यहीं कहना है कि आत्मा है आनन्द का भिखारी, और परमात्मा है ''आनन्द का भण्डारी''। अत: ऋषियों की भांति इस आनन्द के प्राप्त करने में बाधा स्वरूप सभी प्रकार की मूर्तिपूजा को त्याग दे। यह सोपान नहीं है। यह अवनति की खाई है।

एक राजा और सन्त

(मोक्ष कैसे प्राप्त हो)

डॉ. मुमुक्षु आर्य

एक राजा था। राजा अपनी प्रजा को दिल से चाहता था। प्रजा भी राजा को अपना देव समझती थी। एक दूसरे के सुख-दु:ख में, अन्योन्य सहानुभूति से जीवन सुखमय गुजार रहे थे। प्रजा के लिये राजा सब कुछ न्यौछावर करने के लिये तत्पर रहता और प्रजा भी राजा के लिये किसी भी प्रकार का बलिदान देने के लिये कटिबद्ध रहती थी।

और क्यों न हो? उस राजा को प्रिय न थे वैभव और प्रिय न थे विलास। उसे एक ही लगन थी कि मोक्ष कैसे प्राप्त किया जाए? आत्मा के स्वरूप का दर्शन कैसे हो? ऐसे उदासीन राजा को संपत्ति का लालच छूता ही क्यों? सुन्दरियों के सौन्दर्य में उसे स्वर्ग कैसे दीख पड़ता?

ऐसा नि:स्पृही राजा, प्रजा को परेशान क्यों करता? उस पर अत्याचार करने का कोई प्रयोजन ही न रहता। फिर यदि प्रजा के लिये राजा सर्वस्व और राजा के लिये प्रजा ही सब कुछ बन बैठे तो उसमें आश्चर्य किस बात का?

परार्थरसिक की बातें ही न्यारी हैं। स्वार्थियों को तो उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती।

यह राजा हर रोज धर्मसभा बुलाता। भिन्न-भिन्न धर्मों के प्राचार्यों को आमन्त्रित करता। सभी से एक ही प्रश्न पूछता-''मेरा मोक्ष कैसे हो? मुझे कोई मोक्ष की राह दिखलाये।'' अपने-अपने ढ़ंग से सभी समझाते-सामधान करते। राजा सभी के उपदेश सुनता। इस प्रकार कई साल गुजर गये, लेकिन फिर भी राजा का मोक्ष हो नहीं पाया।

राजा की व्यथा चरम सीमा पर पहुँची। राजा प्रतिदिन कृश होने लगा।

किसी संत को इस बात का पता चला कि राजा को मोक्ष की तीव्र लालसा है; लेकिन अभी तक उसे उसकी प्राप्ति हो नहीं पायी।

उसी रात बारह के डंके बजने पर वह राजमहल की अगासी छप्पर पर गये। मध्यरात्रि के समय भी राजा तो उसी विचार में डूबा हुआ था।

अगासी में किसी के पगरव को सुन राजा खड़ा होकर आगे बढ़ा और आह्वान करते हुए कहा-कौन हो?'' संत ने कहा- ''राजन् मेरा ऊँट खो गया है, उसकी खोज करने के लिए यहाँ आया हूँ।'' ठहाका मार कर हँसते हुए राजा ने कहा ''अरे मूर्ख आदमी! ऊँट क्या कभी उतनी ऊँची अगासी पर चढ कर आ सकता है?''

ऐसी खड़खड़ाती हँसी के साथ संत ने कहा ''तो महाराजा मोक्ष कभी क्या राजमहल में बैठे-बैठे पाया जा सकता है? आप भी कैसी मूर्खता कर रहे हैं?''

''सुज्ञेषु किंबहुना?'' राजा को यह बात समझने में देर न लगी। सुबह होते ही राजा ने राजमहल का त्याग कर दिया और निकल पड़ा।

ईश्वर जीव तथा प्रकृति का सम्बन्ध

राजसिंह भल्ला

उपनिषदें बता रही हैं कि यह आत्मा शरीर से अलग है असंग है, अलिप्त है, अविकारी है, शुद्ध है, चेतन है तो सवाल पैदा होता है कि भाई फिर यह शरीर किसके लिए है? उत्तर सीधासादा है कि जिसके लिए यह शरीर बना है उसे ही जीवात्मा कहते हैं। जगत के भोग भोगने और दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति करके मोक्ष प्राप्त करने के लए मानव शरीर के साथ इस जीवात्मा का सम्बन्ध होता है। इस आत्मा का रुप बिगड़ता नहीं यह सदा एक रुप रहता है। जड़ रुप प्रकृति के तत्वों से बने इस शरीर को ही जब यह मानव आपा समझने लगता है तो दु:खी होता है। कुर्सी पर बैठा हुआ व्यक्ति यदि यह कहे कि मैं कुर्सी हूं तो लोग हंसेंगे। ऐसे ही यह जीव यदि यह कहे कि मैं शरीर हूं तो हंसी की ही तो बात है। शरीर से सम्बन्धित आत्मा सुखी भी होती है दु:खी भी, परन्तु जब यह जीवात्मा ध्यान की स्थिति में यह देखता है कि मैं प्रकृति और प्रकृति से बने सारे तत्त्वों तथा पदार्थों से सर्वथा अलग हूँ तो वह इस भ्रम जाल से निकल जाता है। इस परिवर्तनशील प्रकृति से उसे घृणा हो जाती है। और आनन्द धाम की ओर बढ़ने लगता है। जीवात्मा को यही पुरूषार्थ करना है कि वह जड़ प्रकृति के तत्त्वों की असलियत को पहचान कर और उससे ऊपर उठकर सत, चित्त, आनन्द से मिलाप कर ले।

ब्रह्म सत, चित, आनन्द है। इसके साथ मित्रता करके जीवात्मा जो सम चित्त है आनन्द को पाता है। इसी तत्त्व की खोज करनी है, इसी को जानना है, इसी से मित्रता करनी है। यह शरीर तो मरणधर्मा है। ऐसा जीवात्मा का निवास स्थान है इसीलिए जीव सुख-दु:ख से सदा ग्रस्त रहता है इसे आनन्द तभी मिलेगा जब यह आनन्द धाम के पास जाएगा उसकी उपासना करेगा। उससे मैत्री होने से तो सांसारिक सुख दु:ख का स्पर्श भी नहीं होता ऐसी स्थिति में जीव के लिए सुख का भण्डार खुल जाता है। उसी ब्रह्म के सम्पर्क के कारण तो प्रकृति में गति है और उसी की कृपा से यह प्रकृति विकृत होकर नाना रुप धारण कर सृष्टि का निर्माण करती है। ब्रह्म तो केवल दृष्टा मात्र रहता है। सारे संसार को घुमाता है और आप स्थिर रहता है। संसार का सबसे बड़ा कोष आनन्द इस ब्रह्म के पास ही है। पदार्थों से मिला जीवात्मा भ्रम से अज्ञान से यह समझ लेता है कि प्रकृति के तत्त्वों में आनन्द है। छाया को वह जीवात्मा वास्तविक वस्तु समझ लेता है तो उसके पीछे दु:खी होता है। यह दु:ख तभी दूर होता है जब वह इस भ्रम से निकल कर आनन्द भण्डार ब्रह्म की ओर जाता है।

ऋषियों साधकों का यह कहना है कि पंच भूतों के विवेक से ही उस ब्रह्म तत्त्व को जाना जा सकता है। पंच भूत नाशवान् है, जो प्रकृति से बिगड़ कर बने हैं इनकी अपनी निजी सत्ता नहीं है। पहले भी नहीं थे और फिर विनाश को प्राप्त होंगे ये जीव के कल्याण के लिए भेजे गये हैं ये जीव के दास हैं जीव इनका दास नहीं है। ये नशवान् है जीव नित्य है। ये जड़ हैं जीव चेतन है। ज्ञानवान् है। जीव इनके जाल में क्यों फंसे जीव तो जीवात्मा है ठीक है, अल्पज्ञ शरीर में बन्द है दु:ख भोग रहा है और आनन्द की खोज में है किन्तु है तो आत्मा उसका सहयोगी परमात्मा ही है। आत्मा परमात्मा दोनों सखा हैं सखा से सखा विमुख क्यों हो। अत: जीवात्मा के लिए उचित है कि वह अपने सखा परमात्मा से मेल करे, क्योंकि पंच भूतों के पास तो क्या उसकी माता प्रकृति के पास भी आनन्द नहीं है। आनन्द तो केवल परमात्मा के पास ही है। इसी की प्राप्ति के लिए जो क्रिया की जाती है वही अध्यात्मवाद है। सारे उपनिषद इसी की व्याख्या करते हैं।

यह शरीर का संघात और यह सारा संसार प्रकृति के विकार पंच भूतों से ही बना है। जब साधक परमात्मा की ओर बढ़ने का प्रयास करता है तो प्रकृति माया अपने अनेक रूप प्रलोभन, चमत्कार दिखाकर ज्ञान प्राप्त करने वाले को ही अपने वश में करना चाहती है। यह जीव इसके प्रलोभनों में फंसकर उनके अनुसार कर्म करने लगता है। नाना दुखों को खड़ा कर लेता है। जीव इन दु:खों को स्वयं ही पैदा करता है और फिर इनमें फंसकर दु:खी होता हैं एक दु:ख समाप्त नहीं होता दूसरा दु:ख आ घेरता हैं यह संसार तो गुलाब के पौधे के समान है, जिसमें फूल तो कभी-कभी आते हैं किन्तु कांटे सदा उसमें रहते हैं। और वह भी फूलों से सैंकडों गुणा होते हैं। क्या परमात्मा ने प्रकृति को इसीलिए गति दी थी कि वह जीव दु:खों में फंसा रहे। ऐसी बात नहीं है भगवान् तो न्यायकारी है, दयालु है उसका कोई कार्य ज्ञान और बुद्धि के विपरीत नहीं है। ऐसा सारे धर्म शास्त्र बताते हैं तो फिर मानव क्यों दु:खी है? उसके दु:ख नित्य प्रति बढ़ते ही क्यों जा रहे हैं? इसका सीधा-सा उत्तर यही है कि मानव दु:खों को टालने की बात करता है उसके सर्वथा नाश का प्रयास नहीं करता सारे ही शास्त्रों और सारे ही अनुभवी महानुभावों ने दु:खों के अत्यन्त नाश के लिये सर्वदा आनन्द में ही मग्न रहने का एक ही साधन बताया है और वह है अध्यात्मवाद।

गौतम मुनि के दर्शन का सार यह है कि जीव को दु:ख, मिथ्या ज्ञान से होता है। मिथ्या ज्ञान का जब तक नाश नहीं होता तब तक दु:खों का नाश भी नहीं हो सकता। मुनि का कहना है कि मिथ्या ज्ञान का नाश तत्त्व ज्ञान से ही हो सकता है और तत्त्व ज्ञान प्रप्ति का मार्ग ही अध्यात्मवाद है। इसी रास्ते पर चलकर दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति सम्भव है पातञ्जलि मुनि का कहना है अष्टांग योग के द्वारा जीव का अज्ञान नष्ट हो जाता है और जीव अपने आपको इन सारे भौतिक पदार्थो से सर्वथा पृथक् अनुभव करके समस्त दु:खों से मुक्त हो जाता है। जैन मताचार्यों न भी दुखों से छुटकारा पाने के साधन सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक् चरित्र ही बताए हैं।

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है तत्त्व ज्ञान के बिना दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति नहीं हो सकती। इसकी प्राप्ति के लिए साधक जब अपने मन को परमेश्वर में युक्त करता है तो परमात्मा उसकी बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है फिर साधक परमेश्वर प्रकाश को अपने में धारण करता है। परमात्मा से युक्त हुए बिना तत्त्व ज्ञान का प्राप्त होना कठिन है और यह सम्भव होता है केवल ईश्वर के जुड़ जाने से इसी से फिर दु:खों की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है।

यह परम सत्य है कि प्रत्येक जीव जीभर सुख चाहता है और वह इस सुख को भौतिक पदार्थों से प्राप्त करना चाहता है इस तरह से वह अपने आपको भौतिक पदार्थों में फसाता जा रहा हैं। इस प्रकार चेतन की ज्योति पर जड़ता का मल बढ़ता जा रहा है। अत्यन्त सुख पाने के लिए यह मानव न जाने क्या-क्या गोरखधन्धे करता रहता है। यदि वास्वतिक आनन्द की एक झलक इस पर आ पड़े तो इसके वे गोरखधन्धे क्षणभर में समाप्त हो जायें। क्लेशों ने इस मानव का कभी पीछा नहीं छोड़ा। यह देखकर स्वयं क्लेशों की भट्टी में से निकले कुन्दन से बने हमारे दिव्यदर्शी ऋषियों ने उसी भट्टी में पड़े और छटपटाते मानव समूहों को देखकर और दयाद्र होकर उन्हें क्लेशों से बचाने के लिए भगवान् से पुकार की याचना की और समाहित हो गए। समाधि स्थिति में उनके हृदय में कुछ ऋचाएं प्रकाशित हो गई, ऋषियों ने उन्हें जीवन में ढाला तो उनको आनन्द प्राप्ति का एक मात्र साधन अनुभव किया ऋषियों ने, महात्माओं ने उनकी व्याख्या जनता जनार्दन की भलाई के लिए प्रसारित की। उन्हीं व्याख्यानों का नाम है उपनिषद। उन्ही के विचार हम आगे लिखेंगे। ऋषि कहते हैं कि ओ३म् की अराधना करें।

हे जीव । तूं सूर्य और चन्द्र के समान निर्भय बन

डा. अशोक आर्य

इस सृष्टि में सूर्य और चंद्रमा दो एसी शक्तियां हैं, जो कभी किसी से भयभीत नही होतीं। सदैव निर्भय हो कर अपने कर्तव्य की पूर्ति में लगी रहती हैं। यह सूर्य और चन्द्र निर्बाध रूप से निरंतर अपने कर्तव्य पथ पर गतिशील रहते हुए समग्र संसार को प्रकाशित करते हैं। इतना ही नहीं ब्राह्मण व क्षत्रिय ने भी कभी किसी के आगे पराजित होना स्वीकार नहीं किया। विजय प्राप्त करने के लिए वह सदा संघर्षशील रहे हैं। जिस प्रकार यह सब कभी पराजित नहीं होते उस प्रकार ही हे प्राणी! तूं भी निरंतर अपने कर्तव्य पथ पर बढ़ कभी स्वप्न में भी पराजय का वर्ण मत कर। इस तथ्य को अथर्ववेद के मन्त्र संख्या २.१५.३,४ में इस प्रकार कहा है:-

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च, न विभीतो न रिष्यत: ।
एवा में प्राण माँविभे:!! अथर्व २.१५.३ ।।
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च, न विभीतो न रिच्यत ।
एवा में प्राण माँविभे : !! अथर्व. २.१५.४ ।।

यह मन्त्र मानव मात्र को निर्भय रहने की प्रेरणा देता है। मन्त्र कहता है कि हे मानव ! तूं सदा असकता है, अपने जीवन में निर्भर हो कर रह। किसी भी परिस्थिति में कभी भयभीत न हो। मन्त्र एतदर्थ उदाहरण देते हुए कहता है कि जिस प्रकार कभी किसी से न डरने के कारण ही सूर्य और चन्द्र कभी नष्ट नहीं होते, जिस प्रकार ब्रह्म शक्ति तथा क्षात्र शक्ति भी कभी किसी से न डरने के कारण ही कभी नष्ट नहीं होती। जब यह निर्भय होने से कभी नष्ट नहीं होते तो तूं भी निर्भय रहते हुए नष्ट होने से बच।

हम डरते हैं डर क्या है? भयभीत होते हैं, भय क्या है? जब हम मानसिक रूप से किसी समय शंकित हो कर कार्य करते हैं इसे ही भय कहते हैं। स्पष्ट है कि मनोशक्ति का ह्रास ही भय है। किसी प्रकार की निर्बलता, किसी प्रकार की शंका ही भय का कारण होती है, जो हमें कर्तव्य पथ से च्युत कर भयभीत कर देती है। मनोबल क्यों गिरता है- इस के गिरने का कारण होता है पाप, इसके गिरने का कारण होता है अनाचार, इस के गिरने का कारण होता है मानसिक दुर्बलत। जो प्राणी मानसिक रूप से दुर्बला है, वह ही लोभ में फंस कर अनाचार करता है, पाप करता है, अपराध करता है, अपनी ही दृष्टि में गिर जाता है, संसार मैं सम्मानित कैसे होऊँगा? कभी नहीं हो सकता।

मेरे अपने जीवन में एक अवसर आया। मेरे पाँव में चोट लगी थी। इस अवस्था में भी मैं अपने निवास के ऊँचे दरवाजे पर प्रतिदिन अपना स्कूटर लेकर चढ़ जाता था। चढ़ने का मार्ग अच्छा नहीं था। एक दिन स्कूटर चढाते समय मन में आया कि आज मैं न चढ़ पाऊँगा, गिर जाऊँगा। अत: शंकित मन ऊपर जाने का साहस न कर पाया तथा मार्ग से ही लौटा आया। पुन: प्रयास किया किन्तु भयभीत मन ने फिर न बढ़ने दिया, तीसरी बार प्रयास कर आगे बढ़ा तो गिर गया। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि जब भी कोई कार्य भ्रमित में किया जाता है तो सफलता नहीं मिलती। इसलिए प्रत्येक कार्य निर्भय मन से करना चाहिए सफलता निश्चय ही मिलेगी। प्रत्येक सफलता का आधार निर्भय ही होता है।

हम जानते हैं की मनोबल गिरने का कारण दुर्विचार अथवा पापाचरण ही होते हैं। जब हमारे हृदय में पापयुक्त विचार पैदा होते हैं, तब ही तो हम भयभीत होते हैं। जब हम किसी का बुरा करते हैं तब ही तो हमें भय सताने लगता है कि कहीं उसे पता चल गया तो हमारा क्या होगा? इससे स्पष्ट होता है कि छल पाप तथा दोष पूर्ण व्यवहार से मनोबल गिरता है, जिससे भय की उत्पति होती है तथा यह भय ही है जो हमारी पराजय का कारण बनता है। जब हम निष्कलंक हो जावेंगे तो हमें किसी प्रकार का भय नहीं सता सकता। जब हम निष्पाप हो जावेंगे तो हमें किसी प्रकार से भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं रहती। जब हम निर्दोष व्यक्ति पर अत्याचार नहीं करते तो हम किस से भयभीत हों? जब हम किसी का बुरा चाहते ही नहीं तो हम इस बात से भयभीत क्यों हों की कहीं कोई हमारा बुरा न कर दे, अहित न कर दे। यह सब तो वह व्यक्ति सोच सकता है, जिसने कभी किसी का अच्छा किया ही नहीं, सदा दूसरों के धन पर, दूसरों की सम्पति पर अधिकार करता रहता है। भला व्यक्ति न तो एसा सोच सकता है तथा न ही भयभीत हो सकता है।

इसलिए ही मन्त्र में सूर्य तथा चंद्रमा का उदाहरण दिया है। यह दोनों सर्वदा निर्दोष हैं। इस कारण सूर्य व चंद्रमा को कभी कोई भय नहीं होता। वह यथाव्स्त अपने दैनिक कार्य में व्यस्त रहते हैं, उन्हें कभी कोई बाधा नहीं आती। इस से यह तथ्य सामने आता है कि निर्दोषता ही निर्भयता का मार्ग है, निर्भयता की चाभी है, कुंजी है। अत: यदि हम चाहते हैं कि हम जीवन पर्यंत निर्भय रहे तो यह आवश्यक है कि हम अपने पापों व अपने दुर्गुणों का त्याग करें। पापों, दुर्गुणों को त्यागने पर ही हमें यह संसार तथा यहाँ के लोग मित्र के समान दिखाई देंगे। जब हमारे मन ही मालिन्य से दूषित होंगे तो भय का वातावरण हमें हमारे मित्रों को भी शत्रु बना देता है, क्योंकि हमें शंका बनी रहती है कि कहीं वह हमारी हानि न कर दें। इस लिए हमें निर्भय बनने के लिए पाप का मार्ग त्यागना होगा, छल का मार्ग त्यागना होगा तथा सत्य पथ को अपनाना होगा। यही सत्य है, यही निर्भय होने का मूल मन्त्र है, जिस की ओर मन्त्र हमें ले जाने का प्रयास कर रहा है।

वेद कहता है कि मित्र व शत्रु, परिचित व अपरिचित, ज्ञान व अज्ञान, प्रत्यक्ष व परोक्ष, सब से हम निर्भय रहे। इतना ही नहीं सब दिशाओं से भी निर्भय रहे। जब सब ओर से हम निर्भय होंगे तो सारा संसार हमारे लिए मित्र के समान होगा। अत: संसार को मित्र बनाने के लिए आवश्यक है कि हम सब प्रकार के पापों का आचरण त्यागें तथा सब को मित्र भाव से देखें तो संसार भी हमें मित्र समझने लगेगा। जब संसार के सब लोग हमारे मित्र होंगे तो हमें भय किससे होगा, अर्थात हम निर्भय हो जावेंगे। इस निमित्त वेदादेश का पालन आवश्यक है।

१०४-शिप्रा अपार्टमेन्ट,
कौशाम्बी, गाजियाबाद
चलावार्ता : ०९७१ ८५२ ०६८

अशान्ति में शान्ति

स्वामी श्रद्धानन्द

जुलाई के महीने में ही मेरे सबसे ज्येष्ठ भ्राता का एक मुकद्दमा था। एक मुसलमान ने उन पर मस्जिद का कुछ स्थान अपने तबेले में मिला लेने का झूठा अभियोग चलाया। **जब तबेला बन रहा था तो मुसलमान ने धमकी दी यदि उसको २००/- न दिये तो वह धार्मिक भावों पर आक्रमण करने के दोष में दावा कर देगा।** भाई साहब ने मेरी सम्मति पूछी। मैंने उन्हें कहा कि झूठे की धमकी की परवाह न कर सत्य पर आरूढ़ रहना चाहिए। मेरी इस सम्मति का यह फल हुआ कि बेचारे दो-तीन महीनों तक अभियोग में घिसटते फिरे। मैंने कानूनी पैरवी तो की किन्तु **जब सनातनी ब्राह्मण मैजिस्ट्रेट को मुसलमान ने धमकी दी कि वह उन पर हिन्दू का पक्षपात करने का दोषारोपण करेगा तो मजिस्ट्रेट ने बिना सबूत के ३०/- जुर्माना कर दिया।** डिविजनल जज के यहाँ भी यही सिद्ध हुआ कि दावा झूठा है और वह भूमि भी भाई साहेब के कब्जे में रही किन्तु मुझे उन दिनों बड़ा मानसिक कष्ट रहा। मेरी डायरी से पता लगता है कि जून और जुलाई के आषाढ़-श्रावण महीनों में चित्त बड़ा अशान्त रहा, किन्तु २८ जुलाई (१२ श्रावण) को जब लाहौर गया तो उस बड़े नगर से अशान्ति के स्थान में शान्ति लाया। मेरी डायरी में लिखा है- ''पण्डित गुरुदत्त को मिला। मुक्ति विषय में उनके साथ बहुत बातचीत हुई। सर्व मुख्य नियमों में उनकी मेरे विचारों के साथ सहमति है। दूसरे दिन आदित्यवार को लाहौर आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन में सम्मिलित हुआ। उपस्थिति ३०० से अधिक थी। वहाँ से लाला साईंदास के मकान पर पण्डित गुरुदत्त सहित गया, जहाँ सामाजिक नियमों पर परस्पर विचार होता रहा। प्रिय गुरुदत्त को मिलकर मुझे नया धार्मिक बल मिलता है।''

सन् १८८८ का सितम्बर मास (भाद्रपद-आश्विन, संवत् १९४५) मैंने अपने ग्राम तलवन में व्यतीत किया। नैत्यिक सत्संग के अतिरिक्त मैंने एक कन्या पाठशाला भी खुलवा दी किन्तु अध्यापिका की अयोग्यता के कारण जालन्धर लौटते हुए उसे बन्द करना पड़ा। अपने कुटुम्ब में बहुत से सामाजिक संशोधन का भी प्रयत्न किया। अच्छे कामों के लिए जहाँ एक कौड़ी देने का भी अभ्यास न था वहाँ सामूहिक शक्ति के काम करना और उसके लिए धन व्यय करना भी मैंने यथाशक्ति अपनी पुरानी बिरादरी वालों को सिखाया। मास के अन्तिम अर्ध भाग में एक अताई का नुस्खा लेकर मैंने यूनोनी जुलाब लिया जिसके मुझे बहुत निर्बल कर दिया। उसी अवस्था में १५ आश्विन (१ अक्तूबर) को मैं तलवन से चल दिया। कुछ अस्वस्थ होने पर इसी मास में एक नये काम की बुनियाद डाली गई जिसने मेरे चिरकाल के विचार को क्रिया में परणित कर दिया। जिस संस्था का नाम इस समय कन्या महाविद्यालय जालन्धर है उसके संस्थापक की कथा बहुत ही साधारण किन्तु शिक्षाप्रद है। जिस समय का मैं वृत्तान्त लिख रहा हूँ, उस समय जालन्धर में एक पहाड़ी वृद्धा स्त्री रहती थी, जिसे 'माई लाडो' कहकर लोग पुकारते थे। जो भी कुछ अक्षराभ्यास हिन्दी का हिन्दू महिलाओं का था, इस माई की कृपा का परिणाम था। मेरी धर्मपत्नी ने भी इसी माई से कुछ पढ़ा था। इस माई को कुछ विशेष लालच देकर ईसाइयों ने अपनी पुत्री पाठशाला में रख लिया। यह अपनी शिष्या स्त्रियों की लड़कियों को लिहाज-मुलाहजे के दबाव से ईसाई पुत्री पाठशाला में ले जाया करती थी। इसी प्रकार मेरी पुत्री को भी उन्हीं की पाठशाला में बैठाया गया। २ कार्तिक, संवत् १९४५ (१९ अक्टूबर १८८८) को डायरी में लिखा है- ''कचहरी से लौटकर जब अन्दर गया, तो वेदकुमारी दौड़ी आई और जो भजन पाठशाला से सीखकर आई थी, सुनाने लगी-

''इक बार ईसा, ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल।
ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया॥''

मैं बहुत चौकन्ना हुआ। तब पूछने पर पता लगा कि आर्य जाति की पुत्रियों को अपने शास्त्रों की निन्दा करनी भी सिखाई जाती है। निश्चय किया कि अपनी पुत्री पाठशाला अवश्य खोलनी चाहिए।''

तीसरे दिन आदित्यवार था। आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन में रायबहादुर बख्शी सोहनलाल प्लीडर भी सम्मिलित थे। हम दोनों घर को इकट्ठे लौटे। मैंने बख्शी जी से आर्य पुत्री पाठशाला की बात छेड़ी, वे पहले ही से तैयार मिले क्योंकि उनको भी पता लग चुका था, कि उनकी लड़की को क्या पढ़ाया जाता है। फिर क्या था, मैंने उसी रात बैठकर एक अपील लिखी और दूसरे दिन से ही चन्दा लिखाना शुरू हो गया। मेरी डायरी से पता लगता है कि मध्य कार्तिक (अक्तूबर के अन्त) तक मैं बराबर चन्दा इकट्ठा करता रहा। १७ कार्तिक (६ नवम्बर, दिवाली) को ऋषि दयानन्द का मुत्यु दिवस था। उसी दिन प्रात:काल अपने घर में बृहद् हवन कराया। ४० महाशय उपस्थित थे। वहाँ कन्या पाठशाला के लिए फिर अपील की गई। रात को समाज-मन्दिर में ऋषि दयानन्द के जीवन पर मैंने ही व्याख्यान दिया। इन्हीं दिनों एक दूसरे बड़े लाभ की बुनियाद डालने का विचार उपस्थित हुआ। धर्म-सेवा के लिए जहाँ अन्दर से उत्साह उत्पन्न होने लगा वहाँ साथ-ही-साथ साधन भी प्राप्त होने लगे। इन्हीं दिनों में से एक दिन राज-मजदूरों को साप्ताहिक वेतन बाँटना था, पास फूटी कौड़ी नहीं थी। बड़ी चिन्ता में था कि तीसरे पहर तक १३० की आमदनी हो गई। मेरी डायरी में लिखा है- ''मनुष्य को कभी निराश न होना चाहिए, परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिए।'' मुझे इन दिनों अपने विचार सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए किसी साधन की आवश्यकता प्रतीत होते ही परमात्मा ने मार्ग दर्शा दिया और ऋषि उत्सव के दूसरे दिन ही **'सद्धर्म प्रचारक'** साप्ताहिक उर्दू पत्र के निकालने का विचार दृढ़ हुआ। दूसरे ही दिन पच्चीस-पच्चीस रुपयों के १६ हिस्सेदार पैदा हो गये और प्रेस का सामना क्रम करने की सूझने लगी। सभी जालन्धरी हिस्सेदार आये थे। इस समय से चैत्र संवत् १९४६ के अन्त तक सब प्रबन्ध होता रहा और १ वैशाख १९४७ को प्रचारक का पहला अंक निकला।

एक ब्रिटिश शासक से भेंट

इन्हीं दिनों शिक्षा समिति के प्रधान सर चार्ल्स एचीसन महोदय अपने कमीशन का काम समाप्त करके जालन्धर में अपने सम्बन्धी मैकवर्थ यंग, कमिश्नर को मिलने आये थे जो सर मैकवर्थ यंग बनकर पीछे पंजाब के लाट साहब बने थे। उन्हें मिलने जालन्धर के रईस आग्रहपूर्वक मुझे साथ ले गये। उस मिलाप का हाल मेरी डायरी में लिखा है- ''रईस लोग तो प्रशंसायुक्त अत्युक्तियों पर ही भेंट समाप्त करना चाहते थे परन्तु मैंने स्कूलों और कॉलिजों में फीस बढ़ाने का विषय छेड़ दिया।'' सर चार्ल्स ने मुझे रोकने के लिए कहा- ''मैं तो फीस बढ़ाने का पक्षपाती हूँ, जब गवर्नमैंट अपनी प्रजा के भोजन का प्रबन्ध नहीं करती तो शिक्षा का प्रबन्ध उनका उसके लिए किसी युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकता।'' मैंने उत्तर में कहा- ''मनुष्य स्वभावत: भोजन का सामान एकत्र करने को बाधित होते हैं, किन्तु छोटे बच्चों की तरह वे अभी शिक्षा के लाभों से परिचित नहीं। इसलिए दयालु माता की नाई गवर्नमैंट को शिक्षा के लिए लोगों को उत्साहित करना चाहिये।'' मेरी डायरी में लिखा है कि सर चार्ल्स ने इस पर विषय को बदल दिया और नगर के समाचार पूछकर सब को विदा किया। इन दिनों मालूम होता है कि अपने नित्य कर्मों के नियम-बद्ध होने के कारण मेरी मानसिक दशा अच्छी रहने लगी थी। समाज के साप्ताहिक जलसों में उपदेशादि के अतिरिक्त घर पर कई सज्जनों को सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थ भी मैं पढ़ाता था, कन्या पाठशाला के लिए आन्दोलन के अतिरिक्त आर्य पत्रिका के लिए लेख भी भेज दिया करता था और रात को शयन से पहले मेरे मकान पर आर्य भाई हरिकीर्तन के लिए जमा होते थे।

पर्यावरण और संगीत

- वैशाली आर्य

पर्यावरण और संगीत कला का अति प्राचीन काल से ही परस्पर सम्बन्ध रहा है। समस्त प्राणीमात्र के चारों ओर का वह क्षेत्र जो उसे घेरे रहता है, उसके जीवन तथा क्रियाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। वही पर्यावरण कहलाता है। दूसरे शब्दों मे हम पर्यावरण की पास-पडोस ''जैसे शब्द से भी अभिव्यक्त कर सकते हैं। निश्चित रूप से पर्यावरण एक विस्तृत शब्द है। इस परिवृत्ति में मनुष्य से सम्बन्धित वे सभी तथ्य, वस्तुएं, परिस्थितियां, दशाएं यहा तक कि मनुष्य द्वारा जीवन में प्रयोग की जाने वाली कलाएं भी पर्यावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती।

चित्रकला, मूर्तिकला स्थापत्य कला, संगीत कला एवं काव्य कलाओं में से संगीतकला पर पर्यावरण का प्रभाव विशेष रूप से देखा जा सकता है। संगीत की उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि यह कला वेदों के निर्माता ब्रह्मा जी ने शिव को, शिव ने सरस्वती को प्रदान की। तत्पश्चात् यह कला सरस्वती से नारद को, नारद जी द्वारा गान्धर्व, किन्नरों और अप्सराओं को प्राप्त हुई। वहीं से नारद, भरत और हनुमान आदि ऋषि संगीत कला में पारंगत होकर हमारे सामने आए।

''संगीत दर्पण'' के लेखक पं. दामोदर (सन् १६२५ ई.) के मतानुसार संगीत के सात स्वरों की उत्पत्ति जानवरों द्वारा इस प्रकार बतायी गयी है:- मोर से षडज (स), चातक से ऋषभ (रे), बकरे से गांधार (ग), कौए से मध्यम (म), कोयल से पंचम (प), मेंढक से धैवत (ध) एवं हाथी से निषाद (नि) स्वरों की उत्पत्ति हुई। इसी संदर्भ में एक फारसी विद्वान का कथन है कि, ''पहाडो'' पर मूसीकार नाम का एक पक्षी होता है जिसकी नाक में सात सुराख होते हैं। उन्हीं सात सुखों से सात स्वर ईजाद हुए। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट होता है कि सृष्टि के आदिकाल से ही संगीत कला और पर्यावरण का सम्बन्ध रहा है।

संगीत कला में अनेक ऐसे रागों का भी वर्णन आया है कि जिन्हें यदि उनके उचित समय पर गाया बजाया जाए तो उससे वातावरण अवश्य प्रभावित होता है। इस तथ्य को संगीत सम्राट तानसेन के जीवन में घटित एक वास्तविक घटना के माध्यम से सिद्ध किया जा सकता है। एक बार अकबर के दरबार में तानसेन की दीपक राग गाने के लिये कहा गया। तानसेन ने उनकी आज्ञा पूरी करने के लिये दीपक राग गाना आरंभ किया। जैसे-२ राग गाना आरंभ किया, वैसे-२ वातावरण में गर्मी बढ़ने लगी। जिसके परिणाम स्वरूप संपूर्ण वायुमण्डल अग्निमय हो गया। वहां परउपस्थित सभी सुनने वाले अपने-२ प्राण बचाने के लिए भागने लगे। किंतु तानसेन का शरीर अग्नि की लपटों से जल उठा। उसी समय तानसेन अपने घर भागे। वहाँ उनकी पुत्री सरस्वती तथा एक गुरू भगिनी ने राग मेघ गाकर उनके प्राणों की रक्षा की।

तानसेन को गुरू कृपा से ऐसे बहुत से राग रागिनियां सिद्ध थे, जिनके कारण जीवन में पानी बरसाने, जंगली पशुओं को बुलाने, रोगियों को ठीक करने आदि की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएं हुई। ऐसी घटनाओं से पता चलता है कि हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में ऐसी अद्भुत शक्ति है जिससे वह वातावरण मे अन्य प्राणियों के साथ पेड़ पौधों तक को भी प्रभावित कर सकता है।

विदेशों में भी भारतीय शास्त्रीय संगीत के माध्यम से अनेक ऐसे प्रयोग किये गये जिनके अर्न्तगत पेड़ पौधों की यदि संगीतमय वातावरण में रखा जाये तो ऐसे पौधे सामान्य की अपेक्षा शीघ्रता से वृद्धि करते हैं। इसी प्रकार यदि गऊओं को भी संगीतमय वातावरण में रख कर यदि उनका पालन पोषण किया जाये तो वे भी सामान्य गायों की अपेक्षा अधिक दूध देती हैं।

आज विज्ञान के अन्तर्गत ऐसी अनेक नई-नई तकनीकों की खोज की गयी है कि जिनसे पता चलता है कि शास्त्रीय संगीत के माध्यम से अनेकों बीमरियों का भी उपचार किया जाना संभव है। इसी प्रकार यदि बंद कमरे में कोई ऐसा राग गाया बजाया जाए जिसके स्वरों की आवृत्ति शीशे की आवृत्ति से मिलती है। फलस्वरूप स्वरों व शीशे की आवृत्ति के आपस में टकराने से शीशे में दरार पड़ जायेगी अथवा वह पूर्ण रूपेण टूट जायेगा। इसके पीछे वैज्ञानिक कारण है। अत: विशुद्ध रूप से गाया बजाया जाने वाला संगीत वातावरण को अवश्य ही प्रभावित करता है।

आज जब अपने चारों ओर के वातावरण को देखते हैं तो विषय भोगों की अधिकाधिक मात्रा में भोगने की लालसा ही आज संसार में उत्पन्न हुए अनियंत्रित औद्योगिकरण के पीछे प्रमुख कारण है। इसी के परिणामस्वरूप आज सड़कों, नहरों, बांधों, रेलों, कारों, बसों, ट्रकों, संचार साधनों, कल-कारखानों, तकनीकी यंत्रों का जाल सा बिछ गया है। खाद्यान्नों, सब्जियों, फलों आदि का उत्पादन अधिकाधिक करने के लिये रासायनिक खादों तथा कीटनाशक औषधियों का अन्धाधुन्ध प्रयोग किया जा रहा है। इन सभी के दुष्प्रभाव के कारण पृथ्वी पर प्रदूषण भयंकर रूप से फैल रहा है। इसे समाप्त करने के लिये सबसे बड़ा उपाय यज्ञ को बताया गया है।

प्राचीन वैदिक काल की परंपरा के अनुसार सुख, शांति, स्वास्थ्य, शक्ति, धन, वैभव को प्राप्त करने तथा प्राकृतिक प्रकोपों, रोगो, भयों व अनिच्छित घटनाओं को रोकने, वातावरण को शुद्ध एवं पवित्र रखने के लिए वेदादि शास्त्रों में भी यज्ञ के अनुष्ठान का विधान बताया गया है। यज्ञ के अंतर्गत जो मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, उन्हें संगीत के स्वरों को आधार बनाकर उच्चारित किया जाता रहा है। यज्ञ में उच्चरित प्रत्येक मंत्र का एक निश्चित स्वर होता है। जिसका शुद्ध उच्चारण किये जाने के कारण वातावरण अवश्य प्रभावित होता है। इस प्रकार यज्ञ करने से मंत्रो के भावो द्वारा अधिक से अधिक योगदान करते थे।

पर्वतों और वनों मे अनेक ऐसी जनजातियां एवं आदिवासी जातियाँ पायी जाती हैं जिनके जीवन के प्रत्येक भाग में संगीत का योगदान रहा है। बालक के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्तु जिसके अन्तर्गत जन्म के समय गाये जाने वाले बधाई गीत, विवाह आदि उत्सव के समय मंगलगान आदि समस्त अवसरों पर संगीत के द्वारा अपने मनोभावों को प्रकट किया जाता है। इसी प्रकार किसानों द्वारा खेतों में फसल कटाई के समय भी किसान गाते-बजाते हुए अपने कार्यो को सम्पन्न करते हैं। जिससे वे लोग थकान का अनुभव न करते हुए अपने कार्यों की सरलता से पूर्ण करते है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि संगीत किस प्रकार से मानव जीवन के लिये ऊर्जा स्रोत का कार्य करता है।

पर्यावरण के सांस्कृतिक रूप के अंतर्गत मानव द्वारा निर्मित वस्तुएं एवं भू-दृश्य, व्यवसाय, संस्थायें, कलाये तथा विज्ञान, यंत्र, उद्योग धन्धे, प्रौहीगिकी आदि शामिल होते हैं। इनके अतिरिक्त मानव के धर्म, भाषायें, शासन प्रणाली अन्वेषण तथा तकनीकी ज्ञान, परिवहन के साधन, वस्तियां आदि भी पर्यावरण के सांस्कृतिक तत्व होते हैं।

जिस प्रकार पर्यावरणका प्रभाव सभी प्राणियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से पड़ता है। ठीक उसी प्रकार संगीत भी समस्त प्राणियों के जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़ा होता है।

अत: स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पर्यावरण संगीत का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इन दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। ईश्वर प्रदत्त प्रकृति में नदियां, सागर, झरने, पेड़-पौधे, वन, उपवन, पर्वत, फूल पत्ती आदि प्रत्येक वस्तु में संगीत के स्वर जब सुनाई पड़ते हैं तो वही संगीत शाश्वत एवं अपूर्व होता है।

समान नागरिक कानून

- संदीप आर्य
मंत्री-वैदिक मिशन मुम्बई

कहते हैं हम सभी मानव एक ईश्वर की संतान हैं, एक खुदा की औलाद हैं। हम सभी भारतीय प्रतिज्ञा भी लेते है कि हम सब भारत वासी भाई बहन हैं। इस दृष्टि से हम सब लोग एक समान ही हुए । हमारे देश के कानून में भी सभी नागरिकों को जीने का व बोलने का एक समान अवसर दिया गया है... तो फिर धर्म के आधार पर हमारे देश में क्यों अलग अलग कानून बने हैं अथवा बनाए गए हैं ?

अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन काल में समान नागरिक संहिता बनाने की कोशिश की थी किन्तु कट्टरपंथी मुस्लिम वर्ग द्वारा इसका विरोध होता देख अंग्रेजों ने यह विचार त्याग दिया। आज़ादी के बाद भी इसी प्रकार फिर से समान कानून बनाने का प्रस्ताव आया किन्तु फिर मुस्लिम पर्सनल बोर्ड द्वारा विरोध होता देख तथा अपनी वोट की राजनीति को ख्याल में रखते हुए तत्कालीन सरकार ने इस प्रस्ताव को फिर ठंडे बिस्तर में डाल दिया। उस वक्त हमारे देश के न्याय वेत्ता डा. भीमराव अंबेडकर जी ने भी समान नागरिक क़ानून बनाने की कोशिश की किन्तु ऐसा हो न सका।

अब की बार भाजपा ने लोकसभा चुनाव के घोषणा पत्र में समान नागरिक कानून की स्थापना की घोषणा की तथा भारतीय संहिता के भाग ४ के अनुच्छेद ४४ को लागू करवाने का वादा किया। जिसका मतलब -पूरे देश में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास राज्य करेगा।

इस समान नागरिक संहिता के तहत यह कहा गया मुसलमानों को भी ट्रिपल तलाक व् बहु विवाह आदि का स्वछन्द हक न दिया जाये जिस प्रकार हिन्दुओ को नहीं दिया गया है। जब हमने अपने देश को धर्म - निरपेक्ष राज्य घोषित किया है तब ये धर्म सापेक्ष वाली विचारधारा क्यों ? ऐसा कहा गया है कि राजनीति में धर्म का अंकुश नहीं होना चाहिए, फिर धर्म के आधार पर भेद भाव क्यों ?

जब भारतीय दण्ड संहिता सबके लिए समान रखी गयी है, तब नागरिक संहिता अलग अलग क्यों ?

चोरी के मामले में सभी नागरिकों को समान दण्ड व् न्याय देने की प्रथा है तब निकाह व् तलाक में समान प्रथा क्यों नहीं ?

यह अज़ीब सा विरोधाभास लगता है। यह बात न तो किसी बुद्धिजीवी के गले उतरती है, न ही हिन्दू समाज के लोगो को भाती है।

भारत में मुस्लिमो के निजी कानून 'मुस्लिम पर्सनल बोर्ड' द्वारा ही निर्धारित किये गए हैं देश के लॉ बोर्ड द्वारा नहीं। हिन्दुओ के नागरिक संहिता में कई बार फेर फार हो चुका है किंतु १९३७ से अब तक इनके कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ है, जबकि समय की मांग उसमें रिफार्म चाहती है।

समान नागरिक कानून के अनेक लाभ हैं। इससे हिन्दुओ के साथ साथ मुस्लिम वर्ग को भी फायदा है और देश की खुशहाली व् प्रगति में भी सहायक है-

१) आज जब हम नारी स्वतंत्रता की बात करते है, उसको समान दर्जा देने की बात करते है, नारी को मर्दोके कंधे के साथ कंधा मिला कर चलने की आज़ादी देते हैं, तब एक तरफा ट्रिपल तलाक की तलवार उसकी आज़ादी पर वार नहीं करती। अतः उक्त कानून के पास होने से नारी की मौलिक आज़ादी उसको प्राप्त हो सकेगी जिसका उसको बाक़ायदा हक्क भी है। विचारणीय बात यह है कि मुस्लिम महिलाओं के द्वारा इस तरह के बदलाव की पुरजोर मांग उठ रही है। हाल ही में मुंबई की हाज़ी अली दरगाह में औरतों के जाने की छूट इसी बात का शुभ संकेत देता है।

२) समान कानून के तहत ही बहु विवाह पर पाबन्दी लगेगी और इससे प्रति पुरुष के बच्चों की पैदावार में स्वतः कमी आ जायेगी। जिससे उनकी परिवार की माली हालात बेहतर होगी, खुशहाली भी बढ़ेगी और देश में जनसंख्या का असंतुलन का धर्म संकट भी खत्म हो जायेगा।

३) मुसलमानों को हिन्दुओ की अपेक्षा जो विशेष छूट अथवा अधिकार मिल रहे थे उससे हिन्दुओ के मन में एक प्रकार की हीन भावना फ़ैल रही थी, उससे वे मुक्ति पा लेंगे और उनके दिलों से द्वेष की भावना समाप्त होगी, जिससे समाज में प्रेम, सद्भाव व् शांति स्थापित हो सकेगी।

४) इस प्रथा के बन्द होने से 'हलाला' जैसी घिनौनी कुप्रथा भी अपने आप बन्द हो जायेगी जिससे उनकी औरतें शारीरिक उत्पीड़न व् मानसिक ग्लानि से बच जाएँगी, जो कि उनकी ज़िंदगी का सबसे बड़ा अभिशाप है।

५) कुछ व्यक्ति तो केवल कई विवाह करने के लालच से ही मुस्लिम बनते हैं। सबके लिए एक कानून बना तो इस प्रकार का असामाजिक धर्म परिवर्तन अपने आप रुक जाएगा और सामाजिक व्यवस्था भी नहीं डगमगायेगी।

सारी दुनिया के करीब २२ मुल्कों ने जिसमें कनाडा, अमेरिका, यू के, जर्मन, ऑस्ट्रेलिया आदि अनेक विकसित देश आते हैं , इस ट्रिपल तलाक को कब का बैन किया हुआ है, तो फिर भारत में इस पर बन्दिश लगाने में क्या हर्ज है। चलो मान लिया की शरीयत लिखते वक्त ऐसी आवश्यकता पड़ी हो जिसके कारण शरीयत में ट्रिपल तलाक, बहु विवाह आदि रस्में लिखनी पडी हों, किन्तु आज हालात एकदम अलग है, पूरी तरह बदल गए है, इंसान ने बहुत ज्यादा बौद्धिक तरक्की कर ली है, तो क्यों न वक्त के साथ बाकायदा इसे बदल कर हम सारी दुनिया को प्रगतिशील होने का परिचय दें।

देखा गया है कि इस समान नागरिक कानून का सभी मुसलमान विरोध नहीं करते। इस समाज का कुछ तबका ही इसका विरोध करता है। मुस्लिम पर्सनल बोर्ड जो इसका कट्टर विरोधी है, उसका न ही कोई खास वजूद है, न ही इस बोर्ड को भारत सरकार से कोई ख़ास संवैधानिक मान्यता ही प्राप्त है। वह तो एक प्रकार का एनजीओ मात्र ही है और तो और वह समूचे मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व भी नहीं करता।

जब भी समान नागरिक आचार संहिता लागू करने की बात आती है, मुस्लिम कट्टरपंथी शरिया कानून की बात करने लगते हैं। उन्हें लगता है समान नागरिक संहिता लागू होने से देश में मुस्लिम संस्कृति ध्वस्त हो जायेगी, इसके लिए वे कई बार संविधान के भाग ३ में उल्लखित अनुच्छेद २५ का सहारा लेते हैं। अनुच्छेद २५ किसी भी नागरिक को धार्मिक स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार देता है। इस समय वे यह भूल जाते हैं कि हर नागरिक के कुछ दूसरे मौलिक अधिकार भी हैं जैसे अनुच्छेद १४ स्त्री-पुरूष को बराबरी का अधिकार देता है। मुस्लिम पुरूष एक बार में ४ शादियां कर सकता है, परन्तु स्त्री नहीं, तो यह स्त्री के बराबरी के मौलिक अधिकार का हनन नहीं है?? पुरूष ४ शादियां करता है और सभी पत्नियों के साथ एक जैसा व्यवहार नहीं करता है, उन्हें मानसिक कष्ट में रखता है तो यह उनके जीने के अधिकार अनुच्छेद २१ का हनन नहीं है??

यदि कोई कहे कि हम सिर्फ शरीयत के कानून को मानेंगे और दूसरा नहीं तो शरीयत के सभीकानून को मानना पड़ेगा। मसलन यदि कोई चोरी इत्यादि दुष्कर्म करे तो उसे सारे आम कोड़े मारने तथा उसके हाथ पैर काटने का हुक्म है। फिर यह सही नहीं होगा कि कुछ क़ानून शरीयत का माना जाय और कुछ क़ानून भारतीय दण्ड संहिता का। अच्छा अच्छा हाँ हाँ और खराब खराब थू थू नहीं चलेगा।

समझा जाता है कि भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार के इस कदम से राजनीतिक विवाद शुरू होगा क्योंकि देश में समान नागरिक संहिता लागू करने को लेकर राजनीतिक पार्टियां एकमत नहीं हैं। समान नागरिक संहिता पर राजनीतिक दलों के अपने-अपने तर्क हैं तथा अपने अपने कुतर्क भी। कुछ राजनीति दल इसको स्वार्थ वश पास करवाना नहीं चाहते, कुछ अपनी वोट की खतिर कोई यह खतरा मोल लेना नहीं चाहते।

सुप्रीम कोर्ट की बेंच के जज विक्रमजीत सेन तथा शिवा कीर्ति सिंह ने भी सरकार को UCC को क्रियान्वित न करने का कारण पूछा है।

The Economic Times की रिपोर्ट के अनुसार यह पहला मौका है जब किसी सरकार ने लॉ कमीशन को 'समान नागरिक संहिता' को अमली जामा पहनाने के लिए संकेत दिए हैं।

धर्म मानवता को सरल व सही बनाने के लिए होते हैं, न कि दुष्कर बनाने हेतु। धर्म की शिक्षाएं भी यदि समाज के लिए माकूल न हो तो समय व् परिस्थितियों के हिसाब से उसमे परिवर्तन होने चाहिए और लाज़मी भी हैं।

भारत में मुस्लिमो के निजी कानून 'मुस्लिम पर्सनल बोर्ड' द्वारा ही निर्धारित किये गए हैं देश के लॉ बोर्ड द्वारा नहीं। हिन्दुओ के नागरिक संहिता में कई बार फेर फार हो चुका है किंतु १९३७ से अब तक इनके कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ है, जबकि समय की मांग उसमें रिफार्म चाहती है। हिन्दुओ के नागरिक क़ानून में भी यदा कदा फेरबदल होते रहे हैं और उनको हिन्दू कौम ने ना नुकुर करके, थोड़ा बहुत विरोध करके आखिरकार स्वीकार कर लिया और वह तब्दीली हिन्दू समाज के लिए काफी फायदेमंद रही। जैसे बाल विवाह और सती प्रथा पर रोक, विधवा विवाह की छूट आदि कानून।

आशा है प्रगतिशील, बुद्धिजीवी, समाज- सुधारक व्यक्ति सामने आएंगे और इस कानून को कट्टरपंथियों के कब्जे से छुड़ा कर, फेरबदल करके समाज में यथा शीघ्र लाने में कामयाब होंगे और भारत के विकास में सच्चे सहयोगी होंगे।

संदीप आर्य
मंत्री-वैदिक मिशन मुम्बई

सूर्य चिकित्सा

पं. श्रीराम शर्मा

अपचित: प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव।
सूर्य: कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु।।

(अपचित:) हे हानिकारक व्याधियो ! (प्रपतत) दूर जाओ (इव) जैसे (सुपर्ण:) तेज उड़ने वाला पक्षी (बसते:) अपने घोसले से निकल जाता है। (सूर्य:) सूर्य (भेषजम्) चिकित्सा (कुणोतु) करे (वा) तथा (चंद्रमा) चंद्रमा (उप-उच्छतु) समीप होकर प्रकाश करें।

सूर्य की प्रचंड शक्ति समस्त रोगों की चिकित्सा करती है। शरीर की जीवनीशक्ति सूर्य द्वारा ही संचित होती है। रक्त के रोग-विनाशक श्वेत कीटाणुओं को बल, सूर्य की किरणों द्वारा ही मिलता है। जब हम सूर्य भगवान का तेज अपने अंदर धारण करते हैं, तो समस्त हानिकारक व्याधियां उसी प्रकार दूर भाग जाती है, जैसे पक्षी अपने घोसले छोड़कर सूर्योदय होने पर दूसरी जगह चले जाते हैं। चन्द्रमा के प्रकाश में शीतल और स्निग्धता के गुण हैं।

उत् पुस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन्दृष्टांश्च सर्वाश्च प्रमुणन् क्रिमीन्।।

(पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (सूर्य:) सूर्य (उत एति) उदय होता है, (विश्वदृष्ट:) उस उसको देखते है, (अदृष्ट हा) जो सूक्ष्म रोग-जंतु हमें दिखाई नहीं देते, उन्हे नष्ट करता है (दृष्टान्)दिखाई देने वालों को (घ्रन्न) मारता हुआ (च) और (अदृष्टान्) न दिखाई देने वाले (सर्वान्) जितने प्रकार के भी हैं, उन सब (क्रमीन्) रोग-कीटाणुओं को (प्रमृणन्) नष्ट करता हुआ, सूर्य उदय होता है।

नाना प्रकार के रोग-कीटाणुओं से हमारी रक्षा करने वाला सूर्य है। वह अदृश्य रोग-जंतुओं का निरंतर संहार करता रहता है। दिखाई देने वाले ज्वर, क्षय, खांसी, संग्रहणी आदि प्रबल रोग सूर्य द्वारा अच्छे होते है और जो रोग प्रकट नहीं हुए हैं, वरन गर्भ में ही हैं, उन्हें भी सूर्य का तेज नष्ट कर देता है। जब सूर्य उदय होता है, तो समस्त रोग-बाधाओं का नाश करता है।

या रोहिणीदैवत्या गावे या उत रोहिणी:।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्यसि।। - अथर्ववेद १/२२/३

जो देवता संबंधी लाल सूर्य-किरणें हैं, वे लाल गायें है। उनको रूप और बल के अनुरोध उनके साथ तुझको चारों ओर धारण करते हैं। पुष्ट करते हैं।

सूर्य की लाल किरणों की उपमा वेद में लाल गायों से दी गई है। जैसे गाये उत्तम दूध देकर हमारे शरीरों को परिपुष्ट करती हैं, बल-वीर्य को बढ़ाती है, अशक्तता और निर्बलता को दूर करती है, उसी प्रकार लाल किरणों में भी अनेक गुण हैं। वे रोगों के पंजे से छुड़ाकर शरीर को पुष्ट करती हैं, बलवान बनाती है।

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्त्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत्।।

दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए तुझको लाल रंगो से चारों ओर धारण करता हूं। जिससे यह (शरीर) नीरोग हो जाए और फीकेपन से रहित हो जाए।

जिन्हें दीर्घायु प्राप्त करने की इच्छा हो, जो अधिक काल तक जीवित रहने की इच्छा रखता हो, उसे सूर्य की लाल किरणों का सेवन करना चाहिए। फीकापन, निस्तेजता, कफ का प्रकोप, आलस्य, मलिनता को इन लाल किरणों की सहायता से बड़ी सुगमतापूर्वक दूर किया जा सकता है।

अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ।।

तेरा पीलापन, पांडु रोग तथा हृदय की जलन, हृदय रोग, सूर्य की अनुकूलता से उड़ जाए। गौ के तथा प्रकाश के उस लाल रंग से तुझको सब ओर धारण करता हूं। सूर्य की लाल किरणों में पीलिया, पांडु, हृदय की जलन, हृदय रोग आदि अनेक रोगों को दूर करने की बड़ी प्रचंड शक्ति भरी हुई है। जो उनको गो-दुग्ध की तरह सेवन करते रहते हैं, वे नीरोग रहते हैं। उपर्युक्त सूत्रों में सूर्य की लाल किरणों का वर्णन किया गया है। पीली, नीली आदि सप्तरंग की किरणों में सब गुण हैं। सूर्य के सप्त-मुखी घोड़े यह ७ रंगों की किरण ही हैं। इनके गुणों को जानने वाला व्यक्ति अमृतपाणि होकर यशस्वी चिकित्सक बन सकता है।

पूर्णता की ओर अग्रसर हम सब

पं. उम्मेदसिंह विशारद
मो. : 9411 512 019

संसार के सृष्टिक्रम को चलाने की ईश्वर की अद्भुत व्यवस्था है। सुष्टिक्रम का प्रत्येक कार्य नियमित और निर्धारित समय से हो रहा है। ईश्वर की निश्चित व्यवस्थानुसार व विज्ञान के अनुसार सृष्टिक्रम चल रहा है। ज्ञान विज्ञान का समन्वय से संचालन हो रहा है। युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान थे, उन्होंने ईश्वरीय व्यवस्थानुसार व सृष्टि क्रमानुसार विज्ञान के अनुसार संसार को सत्य ज्ञान कराया है।

पूर्णता को प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। न केवल चेतन समुदाय अपितु सृष्टि का प्रत्येक कण इसके लिये लालायित और गतिशील हैं भौतिक जीवन में जिसके पास स्वल्प सम्पदा है वह अधिक की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है। बड़े बड़े सम्राट अपनी इस अपूर्णता को पाटने के लिये दूसरे साम्रज्यों को लूटते रहते हैं। लगता है संसार का हर प्राणी साधनों की दृष्टि से अपूर्ण है, और सभी पूर्णता को प्राप्त करना चाहते हैं।

इतिहास का विद्यार्थी अपने आपको गणित या विज्ञान में शून्य पाता है। भुगोल का संगीत में, वकील डाक्टरी में, यानि जीवन की विद्या में हर कोई अपूर्ण है और हर कोई अगाध ज्ञान का पंडित बनने को तत्पर दिखाई देता है। नदियां पूर्णता को प्राप्त करने के लिये सागर की ओर, वृक्ष आकाश की ओर, धरती भी स्वयं न जाने किस गंतव्य की ओर अधर में आकाश में भागी जा रही है। अपूर्णता की दौड़ में समूचा सौर मण्डल उससे परे का अदृश्य संसार में भी सम्मलित है। पूर्णता प्राप्त करने की बैचैनी न होती तो सम्भवत: विश्व ब्रह्माण्ड में रत्ती भर भी सक्रियता न होती, सर्वत्र नीरस व सुनसान पडा रहता, न समुद्र उबलता, न मेघ बरसते, न वृक्ष उगते, न तारागण चमकते और न वह विराट की प्रदिक्षिणा में मारे मारे घूमते।

जीवन की साथर्कता पूर्णता प्राप्ति में है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि अभी हम अपूर्ण है और असत्य और अन्धकार में है। हमारे सामने मृत्यु मूंह बाये खड़ी है। हर कोई अपने आप को अशक्त और असहाय पाता है, अज्ञान के अन्धकार में हाथ पैर पटकता रहता है।

इस अपूर्णता पर जब कभी विचार आता है तब एक तथ्य सामने आता है और वह है परमात्मा अर्थात एक ऐसी सर्वोपरि सर्वशक्तिमान सत्ता जिसके लिये कुछ भी अपूर्ण नहीं है वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी सर्वद्रष्टा, नियामक और एक मात्र अपनी इच्छा से सम्पूर्ण सृष्टि में संचरण कर सकने की क्षमता में ओत प्रोत है।

पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णातपूर्ण मुदच्यते-।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्णमेवावशिष्यते-।
ओं पूर्णादर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत-।
वस्नेव विक्रीणा वहा इष्मूर्जशतकृतो-।। (यजु. ३-४९)

अर्थात पूर्ण परब्रंह्म परमात्मा से पूर्ण जगत पूर्ण मानव की उत्पति हुई। पूर्ण से पूर्ण निकाल देने पर पूर्ण ही शेष रह जाता है।

जिस प्रकार नदी का एक किनारा समुद्र से जुड़ा रहता है और दूसरा किनारा उससे दूर रहता है, दूर रहते हुए भी नदी समुद्र से अलग नहीं है। नदी को जल समुद्र द्वारा प्राप्त होता है और पुन: समुद्र में मिल जाता है। जगत उस पूर्ण ब्रह्म से अलग नहीं है। मनुष्य उसी पूर्ण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ इसलिए वह अपने में स्वयं पूर्ण है। यदि इस पूर्णता का भान नहीं होता, यदि मनुष्य कष्ट और दु:खों से त्राण नहीं पाता तो उसका मात्र कारण उसका अज्ञान और अहंकार में पड़े रहना ही हो सकता है। इतने पर भी पूर्णता हर मनुष्य की आन्तिरिक अभिलाषा है और वह नैसर्गिक रुप में हर किसी में विद्यमान रहती है।

प्रगति और पूर्णता का लक्ष्य बिन्दु 'देवत्व' प्राप्त करना है-।

क्षुद्रता और परिधि को तोड़ कर पूर्णता प्राप्त कर लेना हर किसी के लिये सम्भव है। मनुष्य की चेतनसत्ता में वह क्षमता मौजूद है, जिसके सहारे वह अपने स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों को विकसित कर देवत्व को प्राप्त कर सकता है। षटचक्रों एवं पंच कोषो में समाहित विलक्षण क्षमताओं सिद्धियों का स्वामी बन सकता है। यही क्षमता को प्राप्त करना देवत्व की ओर जाना है। जबकि क्षमता की दृष्टि में वह उतना ही परिपूर्ण है जितना उसका सृजेता। इस चरम लक्ष की ओर ज्ञान अज्ञात रुप से हर कोई अग्रसर है।

विकास इस सृष्टि की सुनियोजित व्यवस्था है। पदार्थ और प्राणी अपनी अपनी आवश्यकता के अनुरुप अपने अपने ढ़ंग से विकास कर रहे हैं। मनुष्य में देवत्व के उदय की यह सम्भावना विचार विज्ञान एवं ब्रह्म विद्या की परिधि में आती है। व्यक्तित्व का परिष्कार अध्यात्म जगत का परम पूरुषार्थ माना गया है।

' मैं'' के जानने में ही ज्ञान की पूर्णता है।

मैं के साथ मेरा है। जो घमन्ड के साथ कहता है कि मैंने ऐसे किया, ऐसा कर दूंगा। इस नश्वर शरीर को शोभा नहीं देता। इस शरीर का वास्तविक मालिक ईश्वर है। हम दुनिया को जानने की कोशिश में लगे रहते हैं। और संसार के साथ सम्बन्ध कायम करने में लगे रहते हैं। किन्तु स्वयं अपने को जानने कभी प्रयत्न नहीं करते। हम इस साकार ईश्वर के अंग है साकार से हमारा अभिप्राय: प्रकृति के अंग है, यह सारा विश्व हमारा शरीर है। ज्ञान का नाम ही मैं है। मैं है वह परमात्मा सत्ता। इस सत्ता को जानना ही आस्तिकता है। अत: अपने आप को जानकर अपना स्वंय का ज्ञान होना आवश्यक है। मैं क्या हूँ? मैं कौन हूँ? मैं क्यों हूँ? इन छोटे से प्रश्न का समाधान न कर सकने के कारण ''मैं'' को कितनी विषम विडम्बनाओं में उलझना पड़ता है।

यदि मैं शरीर हूँ तो उसका अन्त क्या है? लक्ष्य क्या है? परिणाम क्या है? मृत्यु-मृत्यु-मृत्यु।

क्या वास्तव में ''मैं'' की मृत्यु हो जायेगी। ''नहीं'' क्योंकि जब तक शरीर में आत्मा रहती है तभी तक मनुष्य मैं का उच्चारण करता रहता हैं। जैसे ही आत्मा शरीर से पलायन हुई मैं का मेरे का सम्बोधन भी समाप्त हो जाता है।

आत्मा को जानिए

आत्मा ही जरा-मरण, भूख प्यास समस्त भय सन्देह संकल्प-विकल्पों से रहित नित्य मुक्त, अजर, अविनाशी तत्व है। उसे जान लेने पर ही मनुष्य समस्त भय शोक, चिन्ता कलेशों से मुक्त हो जाता है। आत्मा सर्व व्यापी नित्य तत्व है। आत्मा ही मानव जीवन का मूल सत्य है। आत्मा के पटल पर ही संसार और दृश्य जीवन का छाया नाटक बनता बिगड़ता रहता है।

अध्यात्मा ब्रंह्मा (वृ. उप.) सर्वव्यापी विराट आत्म सत्ता ही ब्रह है। ऐसा उपनिषिदकार ने अपनी अनुभूति के आधार पर कहा है। जिसने आत्मा को जान लिया उसने ईश्वर को जान लिया आत्मा तत्व जब जगत देह इन्द्रिय तथा संसार के पदार्थों को प्रकाशित करता है। जो अनेक रुपों में दिखाई देता है। जैसे जल की बूदें समुद्र पर गिरते समय अलग अलग दिखाई देती है, किन्तु गिरने से पूर्व और गिरने पर वह अथाह सिन्धु के रुप में होती है।

सत-चित-आनन्द पूर्णता की ओर ले जाते हैं

सत:- परमात्मा के अनेक नामों में से एक नाम है, सन्चिदानन्द सत् अर्थाथ-यथार्थता। यथार्थता का अर्थ सत्य को जानना, ऋत सत्य का ज्ञान होना और अपने जीवन को सत्य मार्ग अर्थात ईश्वरीय आज्ञानुसार चलाना, सतपथ कहा जाता है।

चित:- अर्थात चेतना ही मनुष्य का स्वरुप है। उसी के साथ कठिन और जटिल उल्झनों का निर्माता एवं समाधान से जुड़ा हुआ है। सदैव सत्य की और चित्त को ले जाना ही समस्याओं का समाधान है।

आनन्द- जिसमें प्रति प्रसन्नता न्यून या अधिक आनन्द का आधार कारण रुप प्रकृति है बस प्रकृति से ऊपर उठ कर चित्त को सन्चिदानन्द में सदैव लगा देने पर ही परमानन्द की अनुभूति होती है।

अत: महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने हमें वेदों की शिक्षा देकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मार्ग पर चल कर पूर्णता की ओर जाने का मार्ग बताया है।

उपसंहार

मानव को सदा अपने को सत्य ज्ञान में अपूर्ण, सतकर्म में अपूर्ण, सत धर्म में अपूर्ण, सत व्यवहार में अपूर्ण, सत ईश्वर भक्ति में अपूर्ण समझना चाहिए। इससे उसमें अहंकार व अभिमान की निवृत्ती होती है। और वह सत्य पूर्णता की ओर अग्रसर होता है। वेद और वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ और आय समाज के सिद्धान्त यही शिक्षा देते हैं।

महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर एक प्रेरक चिन्तनन

महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर एक प्रेरक चिन्तन

महर्षि द्वारा आर्य समाज के गठन की दूरदर्शिता

महाभारत काल के बाद भारत वर्ष में ईश्वरीय व्यवस्थानुसार ईश्वरीय वाणी वेदों की ओर लौटाने तथा वैदिक धर्म अथार्त सत्य सनातन वैदिक धर्म का मार्ग बताने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भारत माता के माथे पर कलंक पराधीनता तथा भारतवासी धार्मिक, अन्ध विश्वास सामाजिक कुरुतियां व भ्रष्ट राजनीति के गहरे संस्कारों में जकड़े हुए थे। महर्षि दयानन्द जी दूरदर्शी थे, उन्होंने समाज में तमाम बुराइयों को दूर करने के लिये एक वैचारिक क्रान्ती का संगठन ''आर्य समाज'' अथार्त ऐसे लोगों का संगठन जो सदैव उक्त बुराइयों को दूर करने में सहायक हो सकते है। आर्य समाज की स्थापना करी। आर्य समाज एक राष्ट्रीय संगठन है।

महर्षि दयानन्द जी ने भारत को ऐसा मंच दिया कि जो भारत की दिशा और दशा सुधारने में सक्रिय आन्दोलित होउठा। यह ऐतिहासिक सत्य है इस आर्य समाज ने भारत को स्वतन्त्र करा दिया। इस स्वतन्त्रता संग्राम में सर्वाधिक बलिदान आर्य समाजियों ने दिया था।

आर्य समाज की स्थापना हुए १४२वा वर्ष चल रहा है

आर्य समाज के स्थापना के ७२ वर्श १८५७ से १९५७ तक एक क्रान्तीकारी युग था, उसको हम आर्य समाज का स्वार्णिम युग भी कह सकते हैं। आर्य समाज का सदस्य बनना भी एक गौरव की बात होती थी, क्योंकि आर्य समाज के सदस्य का चरित्र अत्यन्त प्रेरणा दायक व सत्यवादी, राष्ट्रवादी, ईश्वरवादी, शुद्ध समाजवादी होता था। एक निष्ठा एवं समपर्ण की भावना साधारण सदस्य तक में होती थी, प्रत्येक आर्य अपने इकाई में चलता फिरता क्रान्ती का विगुल बजाने वाला आर्य समाज था। स्वतन्त्रता आन्दोलन में आर्यों ने सर्वाधिक बलिदान किये। समाज में तमाम धार्मिक अन्धविश्वास रुढ़ी परम्परायें एवं सामाजिक कुरुतियों के विरुद्ध एक वैचारिक आन्दोलन चला दिया तथा ज्ञानमार्ग चुन कर अनेक विषयों पर तत्कालीन मठाधिषों से शास्त्रार्थ करके एक नई ज्योति जगा दी। धार्मिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र के महन्तों को सोचने में मजबूर कर दिया। उनकी सदियों से जमी जड़े हिलाकर रख दी। इन ७२ वर्षों में आर्य समाज ने एक अपना नया इतिहास रच दिया, और महर्षि दयानन्द के कार्यों को पहली श्रेणी में रखा। हम इन वर्षों को आर्य समाज का बलिदानी युग भी कह सकते है।

१९५७ से २०१६ तक ५९ वर्ष का आर्य समाज

आर्य समाज ने भारत को स्वतन्त्र करा दिया तथा स्वतन्त्रता मिलते ही, आर्य समाज का आन्दोलन धीमा पड़ गया। क्यों? चुनौतियां समाप्त हो गयी, क्यो? हम सचमुच में ही स्वतंन्त्र हो गये? क्या महर्षि दयानन्द का सपना पूर्ण हो गया? आर्य समाज की प्रासंगिता कब तक बनी रहेगी? आर्य समाज की स्थापना के साथ हमें इन बिन्दुओं पर गम्भीरता से विचार करना होगा। आर्य समाज एक अनुपम आन्दोलन है। संस्था को जीवित रखने के लिये, मूल उद्देश्यों के प्रति सतत आन्दोलन और उनका क्रियान्वयन आवश्यक होते है। आर्य समाज का सामाजिक आन्दोलन शनै शनै मरने लगा है और आर्य समाज पर रुढ़ीवाद की जंग लगने लगी है। कालान्तर में यह रुढ़ीवाद की जंग आर्य समाज संगठन को एक सम्प्रदाय का रुप दे सकती है।

आर्य समाज के पदाधिकारी भी विद्वानों से कहते हैं तर्क की बात मत करो, खण्डन मत करो, अन्य बुरा मान जायेंगे। विद्वान मंचों से भींच भींच कर बात करते है क्योंकि, आर्य समाज का वर्तमान युग नेतृत्व पर प्रभावी है। सिद्धान्तों पर कही न कही समझौता वादी होता जा रहा है। आर्य समाज के सिद्धान्त, आर्य समाज के तथा कथित मन्दिरों में कैद होकर रह गये है। शास्त्रार्थ की परम्परा समाप्त हो गयी है।

मैं आर्य समाजी सन्यासियों विद्वानों इसके प्रति पूर्णत: समर्पित महारथियों

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-७ अंक-१२ मुम्बई दिसम्बर - २०१६ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. १/-

मार्गशीर्ष २०७२ (२०१६)
Post Date : 25-12-2016
MCN/136/2016-2018
MAHRIL 06007/31/12/18-TC
पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस,**
२६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन,
वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४.
से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति, ______

को अपवाद मानते हुए निस्संकोच कहना चाहता हूँ कि आम आर्य समाजी दूसरे लोगों के साथ या तो समन्वय स्थापित करने में लगा है, या फिर दूरदर्शिता के आभाव में आर्य समाज व अन्य मतमतान्तरों में अंतर न करके आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रति नीरस होता जा रहा है। अधिकांस आर्य परिवारों जहां वैदिक पताका लहराती थी, उनमें आज गणेश जी व अन्य देवी देवताओं की मूर्तियां पूजी जाती है। आर्य परिवारों में मिली जुली पूजा हो रही है। यह आर्य समाज के भविष्य के लिये चिन्ता का विषय है।

आर्य समाज आर्य समाज मन्दिरों में परिवर्तन होने से हानि

महर्षि दयानन्द जी ने यज्ञ को देव यज्ञ कहा है, और यह यज्ञ क्रिया आध्यत्मिक व्यक्तिगत पर्यावरण को शुद्ध करने तथा वेद मंत्रों की रक्षा व उस परमपिता का आभास होता रहे यह व्यक्ति का आन्तिरक मामला है। किन्तु यह यज्ञ सर्व सार्वजनिक प्रदर्शन की क्रिया नहीं है। किन्तु आर्य समाज केवल बड़े बड़े यज्ञों के प्रदर्शन को ही प्रचार समझ रहा है, अपितु यज्ञ को एक माध्यम अलग कृत्य है।

यह ठीक है जन संख्या के आधार पर आर्य समाज भवनों की अत्यधिक बढ़ोती हुई है। यह भी सत्य है कि आर्य समाज के कार्य कर्ता आर्य समाज के भवनों की देख रेख को ही आर्य समाज का कार्य समझ रहे हैं और अपनी तसल्ली के लिये महर्षि दयानन्द जी के नारे लगा कर सन्तुष्ट हो रहे हैं। सनातनी मन्दिरों में रोज मूर्तियों की पूजा होती है, आर्य समाज के मन्दिरों में हवन द्वारा होती है। फर्क केवल यह है सनातनी मूर्ति पूजक है व आर्य समाजी ईश्वर को पूजते हैं। तथा पद लोलुपता, प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं परस्पर दोषारोपण से आर्य समाज मूल उद्देश्यों से भटक रहा है। अर्थात आर्य समाज मन्दिरों में परिवर्तित होने के कारण मन्दिरों में कैद हो गया है।

आर्य समाज संगठन को अंगड़ाई लेनी ही पड़ेगी

लाखों वर्षों के स्वर्ण काल के पश्चात पिछले हजारों वर्षों से भारत ने पतन की पीड़ा झेली है। आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द जी द्वारा इस पीड़ा से मुक्ति दिलाने की दिशा में बोया गया बीज है। भारत की स्वतन्त्रता का पौधा आज लहलहा रहा है। यह १० अप्रैल १८७५ की आर्य समाज की स्थापना का ही सुपरिणाम है। यह स्पष्ट है आर्य समाज के लिये आने वाला समय अधिक महत्वपूर्ण होगा।

अव्यवस्था अति का दूसरा का नाम है। संसार में वर्तमान में अव्यवस्था है अनीति है, अनाचार है। यह संसार व्यवस्था नीति और सदाचार के लिए तड़प रहा हैं इस तड़प को केवल आर्य समाज ही शान्त कर सकता है। अत: आर्य समाज का भविष्य उज्जवल है, चुनौति को स्वीकार करने और उद्यमशील, पुरुषार्थी व वैदिक सिद्धान्तों के आर्य समाज के मन्दिरों की चार दिवारों से बाहर आकर कार्य करने की आवश्यकता है। आर्य समाज को प्रचार के लिये मीडिया को माध्यम बनाना होगा। आज मीडिया का युग है। मेरे इस लेख का उद्देश्य आर्य समाज में और अत्यधिक कार्य करने की विकास के लिये आर्य समाज के कार्यकर्ताओं से प्रार्थना करना मात्र है।

विचार-शक्ति का चमत्कार

(भावना से विचार व फल से अनुभूति प्राप्त होती है)

प्रिय पाठकों,

मनुष्य जीवन का अंतिम सत्य है सुख, शान्ति व आनन्द प्राप्त करना। विचार जब सूक्ष्मता से या आंतरिक कर्म से ब्राह्म कर्म या स्थूलता में परिवर्तित होते हैं तब कर्म पूर्ण होता है। उसी तरह से फल भी जब स्थूलता से सूक्ष्मता में परिवर्तित होता है तब पूर्ण माना जाता है या प्राप्त होता है। उदाहरण के रुप में मोटर गाड़ी बंगला हमें बाझ रुप से तो प्राप्त है लेकिन जब तक हमें उससे सुख नहीं मिलता तब तक आतरिक रुप से प्राप्त नही माना जाएगा या फल पूर्ण नही समझा जाएगा। दूसरे शब्दों में जब तक हमें किसी वस्तु से सुख या दु:ख नहीं प्राप्त होता तब तक वह पूर्ण रुप से प्राप्त नहीं माना जाएगा। अनुभूति होना बहुत ही आवश्यक है। कर्म विचारों द्वारा प्रारम्भ होकर सूक्ष्मता से स्थूलता में परिवर्तित होकर पूर्ण होते हैं उसी तरह फल स्थूलता से प्रारम्भ होकर सूक्ष्मता मे परिवर्तीत होकर पूर्ण रुप से प्राप्त माने जाते हैं। जैसे मेरी भावना थी कि मैं घर में अच्छे फर्नीचर से सुख उठाऊँ और मैंने फर्नीचर खरीदने का विचार किया और मैं फर्नीचर घर लेकर आ गया अत: यह फल मुझे बाह्य रुप से प्राप्त हुआ। लेकिन जब तक मैं उस फर्नीचर का उपयोग कर सुख का अनुभव नहीं करता तब तक वह मुझे पूर्ण रुप से प्राप्त हुआ नहीं माना जाएगा। यानि मेरी यात्रा सूक्ष्मता से प्रारम्भ हुई (विचारों द्वारा) और स्थूलता में परिवर्तित हुई (फर्नीचर द्वारा) और फिर स्थूलता से प्रारम्भ होकर (फर्नीचर के उपयोग के साथ) सुख के अनुभव के साथ सूक्ष्मता में समाप्त हुई। और यह क्रम प्रति दिन होता रहता है और हर किसी वस्तु पर अमल होता है। अगली बार इसका और विस्तार करेंगे। धन्यवाद।

-राजकुमार भगवती प्रसाद गुप्त
मंत्री, आर्य समाज, वाशी